अन्तः ऊर्जा जागरण
साधना सत्र

(साधना निर्देशिका)

लेखक
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक
श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (□□□)
श्रीरामपुरम्, गायत्री नगर-शांतिकुंज, हरिद्वार

संशोधित एवं परिवर्द्धित
द्वितीय संस्करण सन् 2012 मूल्य-14:00

प्रत्येक क्रिया-साधना में भाव संयोग

जीवन क्रियाशीलता का पर्याय है। हर क्षण कोई न कोई स्थूल, सूक्ष्म क्रिया चलती ही रहती है। भिन्न-भिन्न क्रियाओं के भिन्न-भिन्न परिणाम सामने आते रहते हैं। बहुत बार ऊपर से एक जैसी दिखने वाली क्रियाओं के परिणामों में भी भारी अन्तर देखा जाता है। यह अन्तर, क्रिया किस कुशलता से किया गया, इस पर निर्भर करता है। कुशलता में स्थूल क्रिया-कौशल के साथ सूक्ष्म भाव-कौशल का भी बहुत महत्त्व है। लोग अधिकतर स्थूल कौशल से ही सब कुछ लेने के प्रयास में सूक्ष्म कौशल के अभ्यास पर ध्यान नहीं दे पाते। जीवन के उभयपक्षीय कौशलों का निर्वाह जो व्यक्ति कर लेता है, वह भारी हित साध लेता है। गीताकार ने जहाँ योग को 'कर्मसु कौशलम्' (कर्म की कुशलता) कहा है, वहाँ उनका आशय इसी प्रकार के उभयपक्षीय कौशल से रहा है।

इन साधना सत्रों में भागीदार साधकों से अपेक्षा की गई है कि वे भी जीवन साधना को सफल और प्रभावी बनाने वाले इन उभयपक्षीय कौशलों को साधें। एक बार यह सध गये, तो फिर जीवन को साधनामय बनाने का ऐसा सुन्दर प्रवाह चल पड़ेगा, जिसे सराहनीय-अनुकरणीय कहा जा सके। इसी उद्देश्य से यहाँ निर्धारित दिनचर्या की हर क्रिया-साधना से सम्बद्ध उपयोगी सूत्र संक्षेप में प्रस्तुत किये जा रहे हैं:-

निष्कासन तप (केवल प्रथम दिन प्रातः ९.४५से १०.१५)

कपड़े में गाँठें लगी हों और वह मैला हो, तो उसकी धुलाई-रँगाई कैसे होगी। इसी प्रकार अन्त:करण में तमाम ग्रन्थियाँ और मलिनताएँ भरी हों, तो उसे साधना का लाभ कैसे मिलेगा? इस साधना में शामिल होने वाले साधकों को ऐसी विसङ्गति का शिकार न होना पड़े, इसलिए सत्र के पहले दिन, प्रारम्भिक दौर में ही आधा घण्टे का समय निष्कासन तप के लिए अलग से रखा गया है। साधना में प्रवेश के समय ही अपने अन्त:करण की

गहराई तक घुसी मनोग्रन्थियों को खोलने तथा मलिनता को इष्ट के चरणों में समर्पित करने का आध्यात्मिक पुरुषार्थ इस अवधि में करना होगा। यह प्रक्रिया जितने अंशों में सफल हो सकेगी, उतने अंशों में साधकों के अन्त:करण, साधना के दिव्य प्रभावों और इस काल में प्राप्त होने वाले दिव्य शक्ति प्रवाहों का लाभ उठाने की स्थिति में पहुँच जाएँगे। इसके लिए उपयोगी सूत्र इस प्रकार हैं:-

❋ शान्त बैठें। ध्यान करें कि हम युगऋषि द्वारा विकसित जाग्रत् चेतन तीर्थ की गोद में बैठे हैं। तीर्थ चेतना ने हमें माँ की ममता के साथ अपनी गोद में धारण कर लिया है। हम दिव्य माता की गोद में बैठे हैं।

❋ गुरुसत्ता का आवाहन-ध्यान करें। प्रार्थना करें कि हम आपके निर्देशन और अनुशासन में इस साधना सत्र में दीक्षित हो रहे हैं। हम अपना अन्त:करण आपके सामने खोलते हैं, आप अपनी करुणामयी चेतनशक्ति से उसकी गहराइयों तक प्रवेश करके जाने-अनजाने किसी भी तरह प्रवेश पा गए अवाञ्छनीय तत्त्वों को निकाल दें और वाञ्छित संस्कारों एवं ऊर्जा को स्थापित कर दें।

❋ अब अपने अन्त:करण की पर्त उनके सामने क्रमश: खोलें:-

➢ हमसे पिछले जीवन में अमुक.................... पाप, अपराध जाने-अनजाने हुए हैं।

➢ सम्पर्क क्षेत्रवाले हमारे ऊपर अमुक .... दोष/आरोप लगाते हैं, हम उन्हें समझ, स्वीकार या ठीक नहीं कर पा रहे हैं।

➢ हमारे अन्दर- अहंता अमुक .... रूपों में जोर मारती रहती है।

➢ हमारे मन, इन्द्रियों में अमुक इच्छाएँ बार-बार उभरती रहती हैं।

➢ हमारे मन में अमुक व्यक्तियों .... के प्रति ईर्ष्या-द्वेष-दुर्भाव हैं, जो अमुक ढंग से उभरते-व्यक्त होते रहते हैं।

- हे गुरुदेव! आप इन सब तथा इनके अतिरिक्त अन्य उन विकारों को दूर करें, जो हमें आपके अनुशासन और आपके शिष्य/मानस पुत्र/अनुयायी की गरिमा के अनुरूप जीवन जीने में बाधक बनते हैं।
- हमारे अन्दर उन संस्कारों, प्रकृतियों, शक्तियों को जाग्रत् और पुष्ट करें, जो आपको प्रिय लगें और आपके अनुरूप जीवन जीने, कार्य करने में हमारे लिए अनुकूल पड़ें।
- पूरे समय इन्हीं सूत्रों के अनुसार अन्त:करण खोलते रहें। अन्त में भावभरी प्रार्थना करें। हे प्रभो! यह क्रम आप बराबर चालू रखना, हम अपना अन्त:करण आपके सामने खोलते रहेंगे। हमारी साधना को अधिक से अधिक सार्थकता प्रदान करें। अन्त में यह शुभ अवसर देने के लिए कृतज्ञता प्रकट करें।
- निष्कासन तप वाले समय में अन्त:करण के अधिक से अधिक और गहरे से गहरे पर्त खोलने का भरपूर प्रयास करें। किसी असमंजस या चतुराई भरे कुतर्कों को बाधक न बनने दें। निष्कासन तप के बाद कभी भी अन्दर की ग्रन्थियों का बोध होने पर या उनकी स्मृति आने पर नित्य आत्मदेव (दर्पण) साधना तथा रात्रि में तत्त्वबोध साधना के समय हृदय खोलते रहें। इससे साधना के अनुरूप मन की निर्मलता बनाए रखने में मदद मिलेगी।

जागरण-उषापान (प्रात: ३:४५)

जागरण का संकेत होते ही उठें। पहले आँख खुल जाय, तो भी यही क्रम अपनाएँ। स्वयं को चैतन्य अवस्था में लाएँ। जागते ही नया जीवन प्रारम्भ हुआ, इस अनुग्रह के लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करें। धरती माता को प्रणाम करते हुए शय्या से नीचे उतरें। उषापान करें। उषापान बड़ी उपयोगी प्रक्रिया है। इससे शरीर के तमाम विकारों को बाहर निकालने और जीवनीशक्ति के संवर्धन में बहुत मदद मिलती है। पहले से अभ्यास हो तो

ठीक, न हो तो अब प्रारम्भ करें। इसे बासी मुँह, हलके शरीर वालों को लगभग १ लीटर तथा भारी शरीर वालों को सवा लीटर पानी एक साथ धीरे-धीरे पीना चाहिए। नई शुरुआत करने वालों से प्रारम्भ में इतना न पिया जाय, तो क्रमश: बढ़ायें। आजकल इस प्रक्रिया को देश-विदेश में जलोपचार (वाटरथैरपी)के नाम से काफी प्रचारित किया जा रहा है।

आत्मबोध (प्रातः ३:५५ से ४:०५)

उक्त क्रम से १० मि० के अन्दर तैयार हो लें। उसके बाद शय्या या कुर्सी पर शान्त भाव से बैठें। १० मिनट के लिये आत्मबोध साधना करें।

गुरु, तीर्थ एवं ईश चेतना का ध्यान करें। नया जीवन, नयी जागृति देने के लिए उनका अनुग्रह मानें।

➡ उन्होंने जगाया, किसे ? एक साधक को, साधक की अन्त:चेतना को।

➡ गहरी श्वास के साथ अन्त:चेतना-जीव चेतना की जागृति का-सक्रियता का बोध करें। जीवचेतना से निवेदन करें, अब जागे हो तो पूर्ण जागरूकता का परिचय दो। जगाने वाली, नया जीवन देने वाली परमसत्ता के एक-एक संकेत को समझें, हर अनुशासन का पालन करें, विकास की हर सम्भावना-अपेक्षा को साकार करें।

➡ अन्त:करण से गुरु, तीर्थ एवं ईश चेतना को आश्वासन दें-''हम जाग गये, अब जाग्रत् रहेंगे। साधक के अनुरूप समय के एक-एक क्षण और सामर्थ्य के एक-एक कण का सार्थक उपयोग आपके निर्देशानुसार, आपके अनुशासन में रहकर करने का जी तोड़ प्रयास करेंगे। जहाँ चूक होगी, उसे निश्छल भाव से आपके सामने रखेंगे। आपका तो ध्यान हमारी ओर हमेशा रहता ही है, ऐसी कृपा करें कि हमारा ध्यान भी आपकी ओर सतत बना रहे। दिशा और शक्ति आप देना, अनुपालन और पुरुषार्थ हम करेंगे। हम आपके ही अंश हैं, इस सम्बन्ध की गरिमा बनाए रखने का भरपूर प्रयास करेंगे।'

➡ अब एक निगाह अपने आज के जीवन क्रम पर डालें। क्या-क्या करना है, कहाँ-कहाँ सावधानी बरतनी है.......आदि। निर्धारित कार्य योजना को सफल बनाने के सङ्कल्प के साथ दिव्य सत्ता को प्रणाम करें। अपनी दिनचर्या में लग जाएँ।

➡ पू.गुरुदेव ने आत्मबोध साधना को बहुत महत्त्वपूर्ण बताया है। यह साधना ठीक से बन पड़े, तो साधक का सारा दिन साधनामय बन सकता है। जागरण से शयन तक का जीवनकाल इस साधना से अनुप्राणित हो जाता है। केवल एक दिन के लिए कोई भी नियम भारी क्यों पड़े ? केवल आज सुबह से रात्रि तक के अपने निर्धारित जीवनक्रम में भूल क्यों हो ? इससे जीवन की एक-एक इकाई को महत्त्वपूर्ण अनुभव करते हुए सङ्कल्पित जीवन जीने का अभ्यास बनता है। हर श्रेष्ठ कार्य सङ्कल्पपूर्वक करने का विधिविधान ऋषि-मनीषियों ने इसीलिए बनाया है। हर श्रेष्ठ कर्म का आधार हमारा जीवन ही है, इसीलिए अपने स्वरूप का बोध करते हुए आज के जीवन की शुरुआत ऋषि अनुशासन के अनुरूप सङ्कल्पपूर्वक करना इस साधना का उद्देश्य है।

नित्यकर्म (प्रातः ४.०५ से ५.००)

दैनिक शौच-स्नान आदि के क्रम में यह भावनाएँ रखें:- हम अपने इष्ट के पास पहुँचने के लिए स्वयं को तैयार कर रहे हैं। शरीर-मन के कोने-कोने में जमे विकारों, विजातीय तत्त्वों को हम प्रयासपूर्वक अपने से दूर कर रहे हैं। हम तो परमात्मा के अंश-पवित्र आत्मा हैं। यह शरीर सेवा-साधना का सुन्दरतम माध्यम है। इसके तमाम अवयवों को अपने-अपने इष्ट की गरिमा के अनुरूप शुद्ध-पवित्र बना रहे हैं। तीर्थ चेतना, मातृसत्ता इसमें-इस पुरुषार्थ में हमारी मदद कर रही है। हमारे स्वरूप को निखारने के लिए तमाम स्थूल-सूक्ष्म प्रवाहों में से हमें निकाल रही है। अब हम तैयार होकर उस स्वच्छ-सुन्दर बालक के रूप में होंगे, जिसे देखकर हर कोई उसे गोद में लेने प्यार करने के लिए उल्लसित हो उठता है। हम जब इष्ट के पास

पहुँचें, तो वह हमें इसी प्रकार अपनी पावन दिव्य गोद में बैठाकर अपने प्यार, अनुग्रह से हमें तृप्त करें, धन्य बना दें।

नित्यकर्म से निवृत्त होकर १० मिनट हलका व्यायाम करें। शरीर के हर अंग, हर जोड़ की जकड़नें खुल जानी चाहिए। इससे शरीर के अन्दर का प्राणप्रवाह जीवन्त हो उठता है। शरीर की सब क्रियायें ठीक से चल पड़ने से साधना काल में अन्दर से जाग्रत् या अनुग्रह से प्राप्त शक्ति प्रवाहों को पूरे तंत्र में ठीक से सञ्चरित होने में सुविधा रहती है। अभ्यास के अनुसार व्यायाम कर लें। शरीर को हिलाने, चलाने वाली पवनमुक्तासन की क्रियायें, प्रज्ञा अभियान का योग व्यायाम, सूर्य नमस्कार, आसन आदि। कुछ न आता हो, तो बच्चों की तरह फुदक लेना या शय्या पर लेटकर मचल लेने से भी अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है।

शिथिलीकरण (प्रातः ५:०० से ५:१०)

व्यायाम के बाद निर्देशानुसार शिथिलीकरण करें। सीधे लेटकर शरीर को एकदम ढीला छोड़ दें। शरीर के हर अंग को मानसिक तरंगों से संकेत दें कि इस समय आप पूरी तरह तनावमुक्त, विश्राम की स्थिति में रहें। गहरी हलकी श्वास के साथ यह संकेत पैर के तलवे से सिर के ऊपरी भाग तक हर अंग-अवयव तक पहुँचाएँ। फिर शान्त रहकर पूरे शरीर में क्रमशः ध्यान ले जाकर देखें, कहीं तनाव या दबाव तो नहीं है। यदि ऐसा अनुभव हो, तो उसे दूर करने के लिए स्नेह भरा निर्देश दें। कुछ देर प्रलयकालीन जल में पत्ते पर लेटे हुए शिशु की तरह स्वयं को अनुभव करें। कहीं दूर तक कुछ भी नहीं........... सर्वत्र शान्ति...।

शिथिलीकरण की प्रक्रिया सध जाने से तमाम तरह के तनावों से मुक्ति मिलती है। थोड़ी ही देर में लम्बे विश्राम जैसी ताजगी अनुभव होने लगती है।

उज्जायी प्राणायाम (प्रातः ५.१० से ५.२५)

उज्जायी प्राणायाम उत् + जयी शब्दों से मिलकर बना है। उत् अर्थात् ऊर्ध्वगति तथा जयी का अर्थ है इन्द्रिय जय होना अर्थात् इन्द्रिय जय सहित प्राणों के उन्नयन में इससे मदद मिलती है। कण्ठ में विशुद्धि चक्र है, यह चक्र मस्तिष्क तथा हृदय के बीच में दोनों के बीच समन्वय सन्तुलन बनाता है, इसलिए इस प्राणायाम में कण्ठ को सक्रिय करते हुए प्राणायाम किया जाता है। यह प्राणायाम शान्ति प्रदान करने के साथ–साथ शरीर को उष्णता प्रदान करता है। अनिद्रा को दूर करता है। उच्च रक्तचाप के रोगियों के लिए उपयोगी है। यह प्राणायाम रक्त, अस्थि, मज्जा, मेद, वीर्य, त्वचा एवं मांस की व्याधि को दूर करता है।

ध्यानात्मक आसन में बैठें। ठोड़ी को थोड़ा झुका लें। गले में सरसराहट की आवाज के साथ श्वास खीचें, थोड़ी देर रोकें, पुन: दोनों नथुनों से श्वास बाहर निकाल दें। नासिका में आती जाती श्वास के प्रति सजग बने रहें और श्वसन को धीमा एवं लयपूर्ण होने दें। थोड़ी देर बाद अपनी सजगता गले पर ले जाएँ। ऐसा अनुभव करें कि श्वास नासिका से नहीं; बल्कि गले के एक छोटे से छिद्र से आ–जा रही है। श्वास की आवाज बहुत तेज नहीं होनी चाहिए। वह केवल अभ्यासी को सुनाई पड़नी चाहिए। दूसरा व्यक्ति जब तक बहुत निकट न बैठा हो, उसे यह आवाज सुनाई नहीं पड़नी चाहिए।

शक्तिचालिनी मुद्रा (प्रातः ५.२५ से ५.४०)

कुण्डलिनी महाशक्ति की सामान्य प्रवृत्ति अधोगामी रहती है। रति क्रिया में उसका स्खलन होता रहता है। शरीर यात्रा की मल –मूत्र विसर्जन की प्रक्रिया भी स्वभावत: अधोगामी है। शुक्र का क्षरण भी इसी दिशा में होता है। इस प्रकार यह सारा संस्थान अधोगामी प्रवृत्तियों में संलग्न रहता है। इस महाशक्ति के जागरण व उत्थान के लिए शक्तिचालिनी मुद्रा की क्रिया सम्पन्न की जाती है।

शक्तिचालिनी मुद्रा को विशिष्ट प्राणायाम कहा जा सकता है। सामान्य प्राणायाम में नासिका से साँस खींचकर प्राण प्रवाह को नीचे मूलाधार तक ले जाते हैं और फिर ऊपर की ओर उसे वापस लाकर नासिका द्वार से निकालते हैं, यही प्राण सञ्चरण की क्रिया जब मल-मूत्र संस्थान से की जाती है तो शक्तिचालिनी मुद्रा कहलाती है। इस मुद्रा के द्वारा गुदा की पेशियाँ मजबूत होती हैं। मलाशय सम्बन्धी दोषों जैसे- कब्ज, बवासीर, गर्भाशय या मलाशय भ्रंश जैसे रोगों में लाभ मिलता है। प्राण शक्ति का क्षरण रुकता है। व्यक्तित्व प्रतिभा सम्पन्न बनता है।

ध्यानात्मक आसन में बैठें। बाएँ नासिका से श्वास खींचते हुए भाव करें कि प्राण वायु गुदा व जननेन्द्रिय के छिद्रों से प्रवेश कर रही है। अन्त: कुम्भक करें। मूलबन्ध एवं जालन्धर बन्ध लगायें। भाव करें कि प्राण का प्रवाह मूलाधार से ऊपर सहस्रार में पहुँच रहा है। दाएँ नासिका से श्वास छोड़ते हुए भाव करें कि दूषित प्राण वायु, आज्ञाचक्र का भेदन करते हुए बाहर जा रही है। मूल, उड्डियान व जालन्धर बन्धों के साथ बाह्य कुम्भक सम्पन्न करें। भाव करें कि प्राण का प्रवाह मेरुदण्ड मार्ग से ऊपर चढ़ रहा है। इसी प्रकार दायीं नासिका से पूरक तथा बायीं नासिका से रेचक करें। अन्त: कुम्भक व बाह्य कुम्भक में श्वास आसानी से जितना रोक सकें, रोकें। दबाव न डालें।

प्राण सञ्चार प्राणायाम (प्रात: ५.४० से ५.५०)

इस प्राणायाम के साथ हिमालय स्थित ऋषि चेतना द्वारा सञ्चारित युगानुकूल दिव्य प्राण-प्रवाह के अनुदान जुड़े हुए हैं। युग साधकों के लिए पूज्य गुरुदेव ने इसकी व्यवस्था विशेष रूप से सन् 1960 के दशक में बनाई थी। पहले इसका सञ्चार सप्ताह में केवल एक बार निश्चित समय पर होता था। आवश्यकतानुसार उसकी समयावधि बढ़ाई जाती रही। प्राण प्रत्यावर्तन सत्रों के बाद से पूज्यवर ने इस दिव्य प्रवाह को प्रात: ब्रह्ममुहूर्त से सूर्योदय के एक घण्टे बाद तक तथा शाम को सन्ध्याकाल से सूर्यास्त के डेढ़ घण्टे बाद तक के

लिए नियमित रूप से उपलब्ध बना दिया है। क्रम इस प्रकार है-

➡ शान्त, मेरुदण्ड सीधा करके बैठें। ध्यान करें कि गुरुसत्ता, ऋषिसत्ता की अनुकम्पा से तीर्थ क्षेत्र दिव्य प्राण-प्रवाह से भर गया है। हमारे भाव भरे आवाहन और पू. गुरुदेव के ध्यान-निर्देशों के प्रभाव से वह दिव्य चेतन प्राण हमारी ओर उन्मुख है। माँ की ममता के भाव से हमें लपेटे हुए हैं।

➡ गहरी तृप्तिदायक श्वास दोनों नथुनों से खींचें। जितनी देर में वायु खींची है, उससे लगभग आधे समय तक अन्दर रोकें। जितने समय में खींचा, उतने ही समय में धीरे -धीरे बाहर निकालें। अन्दर जितने समय रोका, उतने ही समय बाहर रोकें।

➡ श्वास खींचते समय भाव करें कि हम उस दिव्य प्राण प्रवाह को सम्मानपूर्वक शरीर के हर अंग-अवयव तक पहुँचा रहे हैं। श्वास रोकते समय भाव करें- वह दिव्य ताजा प्राण हमारे शरीर में स्थापित हो रहा है, पुराने, बासी प्राण को विस्थापित कर रहा है। श्वास निकालते समय भाव करें- वायु के साथ बासी प्राण विकारों सहित बाहर जा रहा है। बाहर रोकते समय भाव करें- निष्कासित प्राण विकार दूर चले गये, अन्दर दिव्य प्राण प्रकाशित हो रहा है। अंग-अंग पुलकित हो रहे हैं।

➡ ध्यान रहे, श्वास के साथ वायु तो सीधा फेफड़ों में जाता है, वहाँ से रक्त के साथ मिलकर शरीर के किसी भी भाग में सञ्चरित हो सकता है। अस्तु, प्राणायाम के साथ सङ्कल्पपूर्वक दिव्य प्राण-प्रवाह को शरीर के हर अंग-अवयव हर कोश तक ले जाने का भाव करें।

➡ श्वास के साथ प्राण की गति बन जाने पर रोम-रोम पुलकित होने लगता है। तब भाव करें- नासिका के साथ हर रोमकूप श्वास-प्रश्वास कर रहा है। जैसे सूखी मिट्टी पर पानी पड़ते ही उसका हर कण जल को सोखने लगता है, वैसे ही हमारा हर कोष दिव्य प्राण को सोख रहा है। अन्दर-बाहर से दिव्य प्राण का प्रकाश उभर रहा है।

यह प्राणायाम सध जाने से शरीर-मन-अन्त:करण के पर्याप्त विकारों का शमन होने लगता है। तीनों शरीरों की वाञ्छित आपूर्ति होने लगती है।

ध्यान (प्रातः ५.५० से ६.२५)

ध्यान के कैसेट के पूर्व बजने वाली संगीत की धुन प्रारम्भ होते ही स्वस्थ चित्त होकर अपनी साधना के आसन पर पहुँच जायें। ध्यान के पूर्व वन्दनीया माताजी के द्वारा दिये जाने वाले निर्देशों को ध्यान से सुनें और उन्हीं का अनुपालन करते हुए पू.गुरुदेव के ध्यान संकेतों के अनुसार ध्यान करें।

पञ्चकोशी ध्यान धारणा

पञ्चकोशी ध्यान गायत्री की उच्च स्तरीय साधना है। पञ्चमुखी गायत्री प्रतिमा में पाँच मुख मानवीय चेतना के पाँच आवरण हैं। इनके उतरते चलने पर आत्मा का असली रूप प्रकट होता है। इन्हें पाँच कोश पाँच खजाने भी कह सकते हैं। अन्तःचेतना में एक से एक बढ़ी-चढ़ी विभूतियाँ प्रसुप्त अविज्ञात स्थिति में छिपी पड़ी हैं। इनके जागने पर मानवीय सत्ता देवोपम स्तर पर पहुँची हुई, जगमगाती हुई दृष्टिगोचर होती है।

पञ्चकोश ध्यान धारणा के निर्देश में परम पूज्य गुरुदेव ने जो पाँच प्राण तत्त्व कहे हैं, वे इस प्रकार हैं।

पाँच प्राण - चेतना में विभिन्न प्रकार की उमंगें उत्पन्न करने का कार्य प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान ये पाँच प्राण करते हैं।

पाँच तत्त्व - अग्नि, जल, वायु , आकाश और पृथ्वी यह पाँच तत्त्व काया, दृश्यमान पदार्थों और अदृश्य प्रवाहों का सञ्चालन करते हैं। समर्थ चेतना इन्हें प्रभावित करती है।

पाँच देव - भवानी, गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन्हें क्रमशः बलिष्ठता, बुद्धिमता, उपार्जन शक्ति, अभिवर्धन, पराक्रम एवं परिवर्तन की प्रखरता कह सकते हैं। यही पाँच शक्तियाँ आत्मसत्ता में भी विद्यमान है और इस छोटे ब्रह्माण्ड को सुखी समुन्नत बनाने का उत्तरदायित्व सम्भालती हैं।

पञ्च कोश - आत्म सत्ता के पाँच कलेवरों के रूप में पञ्चकोश को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है। पञ्चकोश निम्नलिखित हैं-

अन्तः ऊर्जा जागरण साधना सत्र

आवेदन-पत्र का प्रारूप

आवेदन पत्र हाथ से लिखकर अथवा फोटो कॉपी बड़े साईज (A4) में कराकर ही आवेदन भरें। इस पन्ने को न फाड़ें।)

आवेदनकर्त्ता का नवीनतम फोटो लगाएँ

१. श्री/श्रीमती/कु. ————————पिता/पति का नाम————————

२. पत्र व्यवहार का पूरा पता ————————————————————

————————————————————————————

जिला ——————————प्रान्त —————— पिन कोड ——————

३. मोबा./टेलीफोन (STD कोड सहित)————————————————

आयु —————— ५. शिक्षा ———————— व्यवसाय ————————

८. शान्तिकुञ्ज में कौन-कौन से सत्र, कब-कब सम्पन्न किए? ——————

————————————————————————————

१०. सत्र में कब भाग लेना चाहते हैं। न्यूनतम २-३ तिथियों का उल्लेख करें।

————————————————————————————

११. मिशनरी कार्य हेतु प्रतिदिन, साप्ताहिक, मासिक, वार्षिक कितना समय देते हैं? ————————————————————————

१२. अंशदान कितना निकालते हैं? ————————————————

१३. समयदान के क्रम में किये गये उल्लेखनीय कार्य एवं सप्त आन्दोलनपरक या अन्य कोई सेवा कार्यों का विवरण ————————————————

————————————————————————————

१४. मिशन की कौन सी पत्रिका, कितनी संख्या में मँगाते हैं। (अखण्ड ज्योति, युग निर्माण योजना, प्रज्ञा अभियान पाक्षिक, युग शक्तिगायत्री,)

————————————————————————————

१५. शिविर के अनुशासन का भली-भाँति पालन करने एवं शारीरिक और मानसिक दृष्टि से रोगी न होने का आश्वासन देता/देती हूँ।

आवेदक का नाम

दिनांक ——————— ———————

1. अन्नमय कोश – प्रत्यक्ष शरीर, जीवन शरीर। अन्नमयकोश ऐसे पदार्थों का बना है जो आँखों से देखा और हाथों से छुआ जा सकता है। अन्नमयकोश के दो भाग किये जा सकते हैं। एक प्रत्यक्ष अर्थात् स्थूल, दूसरा परोक्ष अर्थात् सूक्ष्म, दोनों को मिलाकर ही एक पूर्ण काया बनती है। **पञ्चकोश की ध्यान धारणा में जिस अन्नमयकोश का ऊहापोह किया गया है, वह सूक्ष्म है, उसे जीवन शरीर कहना अधिक उपयुक्त होगा।** अध्यात्म शास्त्र में इसी जीवन शरीर को प्रधान माना गया है और अन्नमयकोश के नाम से इसी की चर्चा की गई है। योगी लोगों का आहार-विहार बहुत बार ऐसा देखा जाता है जिसे शरीर शास्त्र की दृष्टि से हानिकारक कहा जा सकता है फिर भी वे निरोगी और दीर्घजीवी देखे जाते हैं, इसका कारण उनके जीवन शरीर का परिपुष्ट होना ही है। **अन्नमय कोश की साधना जीवन शरीर को जाग्रत्, परिपुष्ट, प्रखर एवं परिष्कृत रखने की विधि व्यवस्था है।**

जीवन-शरीर का मध्य केन्द्र नाभि है। **जीवन शरीर को जीवित रखने वाली ऊष्मा और रक्त की गर्मी जो सञ्चार का कारण है और रोगों से लड़ती है, उत्साह स्फूर्ति प्रदान करती है, यही ओजस् है।**

ध्यान धारणा – ध्यान धारणा में श्रद्धा और सङ्कल्प के साथ भावना करें कि साक्षात् सविता देव नाभि चक्र में अग्नि के माध्यम से सारे शरीर में प्रवेश कर रहे हैं। जीवन शरीर में ओजस् का उभार और व्यक्तित्व में नव जीवन का सञ्चार हो रहा है। पहले की अपेक्षा सक्रियता बढ़ गई है, उदासी दूर हुई है और उत्साह एवं स्फूर्ति में उभार आया है।

2 . प्राणमय कोश – जीवनी शक्ति। जीवित मनुष्य में आँका जाने वाला विद्युत् प्रवाह, तेजोवलय एवं शरीर के अन्दर एवं बाह्य क्षेत्र में फैली हुई जैव विद्युत् की परिधि को प्राणमय कोश कहते हैं। शारीरिक स्फूर्ति और मानसिक उत्साह की विशेषता प्राण विद्युत् के स्तर और अनुपात पर निर्भर रहती है।

चेहरे पर चमक, आँखों में तेज, मन में उमंग, स्वभाव में साहस एवं प्रवृत्तियों में पराक्रम इसी विद्युत् प्रवाह का उपयुक्त मात्रा में होना है। इसे ही प्रतिभा अथवा तेजस् कहते हैं। शरीर के इर्दगिर्द फैला हुआ विद्युत् प्रकाश तेजोवलय कहलाता है। यही प्राण विश्वप्राण के रूप में समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। इसे पात्रता के अनुरूप जितना अभीष्ट है, प्राप्त कर सकते हैं।

ध्यान करें – सविता शक्ति मूलाधार चक्र (गुदा के समीप)के माध्यम से प्राणमय कोश में प्रवेश और संव्याप्त हो रही है। सविता की विद्युत् शक्ति काया में संव्याप्त बिजली के साथ मिलकर उसकी क्षमता असंख्य गुना बढ़ा देती है। ध्यान करें कि मेरे कण-कण में, नस-नस में, रोम-रोम में सविता से अवतरित विशिष्ट शक्ति का प्रवाह गतिशील हो रहा ह। आत्मसत्ता प्राण विद्युत् से ओत-प्रोत एवं आलोकित हो रही है। यह दिव्य विद्युत् प्रतिभा बनकर व्यक्तित्व को प्रभावशाली बना रही है, पराक्रम और साहस का जागरण हो रहा है।

3. मनोमय कोश – विचार बुद्धि, विवेकशीलता। मनोमय कोश पूरी विचारसत्ता का क्षेत्र है। इसमें चेतन, अचेतन एवं उच्च चेतन की तीनों ही परतों का समावेश है। इसमें मन, बुद्धि और चित्त तीनों का संगम है। **मन कल्पना करता है। बुद्धि विवेचना करती और निर्णय पर पहुँचाती है। चित्त में अभ्यास के आधार पर वे आदतें बनती हैं, जिन्हें संस्कार भी कहा जाता है। इन तीनों का मिला हुआ स्वरूप मनोमय कोश है।**

मनोमय कोश का प्रवेश द्वार आज्ञाचक्र (भ्रू मध्य) है। आज्ञाचक्र जिसे तृतीय नेत्र अथवा दूरदर्शिता कह सकते हैं, इसका जागरण एवं उन्मीलन करना मनोमय कोश की ध्यान धारणा का उद्देश्य है। आज्ञाचक्र की संगति शरीर शास्त्री पिट्यूटरी एवं पीनियल ग्रन्थियों के साथ करते हैं।

ध्यान धारणा–व्यक्ति चेतना में उच्चस्तरीय प्रखरता उत्पन्न करने के लिए ब्रह्मचेतना के समावेश की आवश्यकता पड़ती है। ब्रह्मसत्ता की उसी की विनिर्मित प्रतीक–प्रतिमा सूर्य है। उसकी सचेतन स्थिति सविता है, भावना करें सविता का प्रकाश आज्ञाचक्र, मस्तिष्क क्षेत्र से सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त,मनोमय कोश में फैल रहा है। आत्मसत्ता का समूचा चिन्तन, क्षेत्र, मनोमय कोश सविता की ज्योति एवं ऊर्जा से भर गया है। आत्मसत्ता की स्थिति ज्योति पुञ्ज एवं ज्योति पिण्ड बनने जैसी हो रही है। दृश्य में ज्योति का स्वरूप भावानुभूति में प्रज्ञा बन जाता है। **सविता के मनोमय कोश में प्रवेश करने का अर्थ है– चेतना का प्रज्ञावान् बनना, ऋतम्भरा से–भूमा से आलोकित एवं ओतप्रोत होना। इस स्थिति को विवेक एवं सन्तुलन का जागरण भी कह सकते हैं।** इन्हीं भावनाओं को मान्यता रूप में परिणत करना, श्रद्धा, निष्ठा एवं आस्था की तरह अन्य क्षेत्र में प्रतिष्ठापित करना–यही है सविता शक्ति का मनोमय कोश में अवतरण। भावना करें कि प्रज्ञा–विवेक, सन्तुलन की चमक मस्तिष्क के हर कण में प्रविष्ट हो रही है, सङ्कल्पों में दृढ़ता आ रही है।

4. विज्ञानमय कोश – भाव प्रवाह। विज्ञानमय कोश चेतन की तरह है जिसे अतीन्द्रिय–क्षमता एवं भाव संवेदना के रूप में जाना जाता है। विज्ञानमय और आनन्दमय कोश का सम्बन्ध सूक्ष्म जगत् से ब्रह्मचेतना से है। सहानुभूति की संवेदना, सहृदयता और सज्जनता का सम्बन्ध हृदय से है। यही हृदय एवं भाव संस्थान अध्यात्म शास्त्र में विज्ञानमय कोश कहलाता है। परिष्कृत हृदय–चक्र में उत्पन्न चुम्बकत्व ही दैवी तत्त्वों को सूक्ष्म जगत् से आकर्षित करता और आत्मसत्ता में भर लेने की प्रक्रियाएँ सम्पन्न करता है।

श्रद्धा जितनी परिपक्व होगी–दिव्य लोक से अनुपम वरदान खिंचते चले आएँगे। अतीन्द्रिय क्षमता, दिव्य दृष्टि, सूक्ष्म जगत् से अपने प्रभाव–पराक्रम पुरुषार्थ द्वारा अवतरित होता है।

ध्यान धारणा :- विज्ञानमय कोश में सविता प्रकाश का प्रवेश 'दीप्ति' के रूप में माना गया है। **दीप्ति प्रकाश की वह दिव्य धारा है, जिसमें प्रेरणा एवं आगे बढ़ने की शक्ति भी भरी रहती है, ऐसी क्षमता को वर्चस् कहते हैं।** यह प्रेरणा से ऊँची चीज है। प्रेरणा से दिशा प्रोत्साहन देने जैसा भाव टपकता है, किन्तु वर्चस् में वह चमक है जो धकेलने, घसीटने, फेंकने, उछालने की भी सामर्थ्य रखती है। नस-नस में रोम-रोम में दीप्ति का सञ्चार, दीप्ति का प्रभाव, दिव्य भाव संवेदनाओं और अतीन्द्रिय ज्ञान के रूप में होता है। दीप्ति की प्रेरणा से सद्भावनाओं का अभिवर्धन होता है और सहृदयता जैसी सत्प्रवृत्तियाँ उभर कर आती हैं, ऐसी आस्था अन्तःकरण में सुदृढ़ अवस्था में होनी चाहिए। स्वयं को असीम सत्ता में व्याप्त फैला हुआ अनुभव करें। सहृदयता, श्रद्धा, दिव्य ज्ञान का विकास और स्नेह करुणा जैसी संवेदनाओं से रोमाञ्च का शरीर में बोध हो रहा है।

५. आनन्दमय कोश :- आनन्दमय कोश चेतना का वह स्तर है, जिनमें उसे अपने वास्तविक स्वरूप की अनुभूति होती रहती है। आत्मबोध के दो पक्ष हैं-1. अपनी ब्राह्मी चेतना, ब्रह्म सत्ता का भान होने से आत्मसत्ता में संव्याप्त परमात्मा का दर्शन होता है।

2. संसार के प्राणियों और पदार्थों के साथ अपने वास्तविक सम्बन्धों का तत्त्वज्ञान भी हो जाता है। **इस कोश के परिष्कृत होने पर एक आनन्द भरी मस्ती छाई रहती है। ईश्वर इच्छा मानकर प्रखर कर्त्तव्य-परायण; किन्तु नितान्त वैरागी की तरह काम करते हैं। स्थितप्रज्ञ की स्थिति आ जाती है।** आनन्दमय कोश की ध्यान धारणा से व्यक्तित्व में ऐसे परिवर्तन आरम्भ होते हैं, जिसके सहारे क्रमिक गति से बढ़ते हुए धरती पर रहने वाले देवता के रूप में आदर्श जीवनयापन कर सकने का सौभाग्य मिलता है।

ध्यान धारणा - धारणा में सविता का सहस्रार मार्ग से प्रवेश करके समस्त कोश सत्ता पर छा जाने, ओत-प्रोत होने का ध्यान किया जाता है। यदि

सङ्कल्प में श्रद्धा, विश्वास की प्रखरता हो, तो सहस्रार का चुम्बकत्व सविता शक्ति को प्रचुर परिमाण में आकर्षित करने और धारण करने में सफल हो जाता है। इसकी अनुभूति कान्ति रूप में होती है। **कान्ति सामान्यतः सौन्दर्य मिश्रित प्रकाश को कहते हैं और किसी आकर्षक एवं प्रभावशाली चेहरे को कान्तिवान् कहते हैं, पर यहाँ शरीर की नहीं आत्मा की कान्ति का प्रसङ्ग है। इसलिए वह तृप्ति, तुष्टि एवं शान्ति के रूप में देखी जाती है।** तृप्ति अर्थात् सन्तोष। तुष्टि अर्थात् प्रसन्नता। शान्ति अर्थात् उद्वेग रहित, सुस्थिर मनःस्थिति। यह तीनों वरदान, तीनों शरीरों में काम करने वाली चेतना के सुसंस्कृत उत्कृष्ट चिन्तन का परिचय देते हैं। स्थूल शरीर सन्तुष्ट, तृप्त। सूक्ष्म शरीर प्रसन्न, तुष्ट। कारण शरीर शान्त समाहित। इस स्थिति में सहज मुसकान बनी रहती है, हलकी-सी मस्ती छायी रहती है।

सविता शक्ति के पञ्चकोश में प्रवेश करने और छा जाने की अनुभूति ऐसी गहरी और भावमय होनी चाहिए जैसे प्रसन्नता की स्थिति में मन उल्लास से उभरता है या धूप में बैठने से शरीर गर्म होता है।

तीर्थ विचरण (प्रातः ६.२५ के बाद)

चौबीस घण्टे में एक बार साधकगण ४५ मिनट के लिए कक्ष से बाहर तीर्थ क्षेत्र में निकलेंगे। इस अवधि में कक्ष के बाहर तीर्थ के दिव्य वातावरण का अनुभव करते हुए मनोभावों को तीर्थ के सचेतन प्रवाहों के साथ सतत सघनता से जोड़े रखना है। इस बीच किये जाने वाले कार्यों के साथ जुड़े साधनात्मक सूत्र-संकेत निम्नानुसार हैं:-

कल्क सेवनः- कक्ष से निकलकर साधक गण दिव्य औषधियों से तैयार किये गये, अखण्ड दीपक के पास तीर्थ ऊर्जा से अनुप्राणित किये गये कल्क का सेवन करेंगे। साधना काल में साधक को दिव्य वृक्षों-वनस्पतियों से उल्लेखनीय सहयोग प्राप्त होता रहा है। स्वयं भगवान् शिवजी, काकभुशुण्डि,

तमाम ऋषियों, मुनियों से लेकर भगवान् बुद्ध तक ने साधना काल में वृक्षों के दिव्य तेजोवलय (ऑरा) का लाभ उठाया है। यज्ञों में सोमलता का रस निकालकर 'सोम' रस तैयार करने से लेकर चरणामृत में तुलसीदल डालकर रखने के पीछे तथ्य यही रहा है कि दिव्य औषधियों के ओजस् से साधकों को साधनारत रहने, दिव्य ऊर्जा प्रवाहों का लाभ उठाने में भारी मदद मिलती है। इसीलिए पू. गुरुदेव विशिष्ट साधना सत्रों में वनौषधि-कल्क का क्रम चलाते रहे हैं। इन सत्रों में भी इनका लाभ लिया जाना है।

ध्यान रहे कल्क सेवन होम्यो. औषधि सेवन जैसी सावधानी की अपेक्षा रखता है। होम्यो. औषधियों को बनाने, रखने, देने-लेने एवं सेवन करने में उसकी पवित्रता बनाए रखनी पड़ती है, अन्यथा जरा-सी असावधानी से औषधि का प्रभाव नगण्य जैसा हो जाता है, मूल प्रभाव तो दिव्य प्रकृति युक्त उनके ओजस्-तेजस् का होता है। अस्तु, इन्हें बनाने से सेवन करते समय तक दिव्य भावनाओं का समावेश रखा जाता है। साधकगण कल्क सेवन इस प्रकार करें:-

कल्क पात्र को श्रद्धापूर्वक हाथ में लें। सविता की उस सावित्री शक्ति को मन ही मन नमन करें, जो वनौषधियों में दिव्यता भर देती है। मन ही मन प्रार्थना करें 'हे सावित्रि! इस दिव्य औषधि का दिव्य प्रभाव हमारे व्यक्तित्व में भली प्रकार समाहित हो और फलित हो।' इस भावना के साथ कल्कामृत का पान करें।

अखण्ड दीप दर्शन:- दीपक अपनी पात्रता के साथ तैयार हुआ, जाग्रत् ज्योति ने उसे स्पर्श किया, दीपक ज्योतित् हो गया। उसने ज्योति के ऊर्जा चक्र को सतत बनाए रखने की साधना की, ज्योति अखण्ड हो गई। पू. गुरुदेव अपनी पात्रता के साथ तैयार हुए, ऋषि सत्ता ने उन्हें स्पर्श देकर नवसृजन के लिए दिव्य ऊर्जा युक्त ज्योति प्रदान की, उन्होंने उस दिव्य ऊर्जा चक्र को निर्बाधरूप से जाग्रत् रखा, उनकी इस अखण्ड साधना का प्रतीक-प्रतिनिधि है, आश्रम में स्थित अखण्ड दीप। (सन् १९२६ से सतत प्रज्वलित)।

दीप दर्शन के लिए जाते समय अपने अन्दर साधना प्रवृत्तियों को अखण्ड बनाए रखें। कौतुक में अपनी दृष्टि इधर-उधर न दौड़ाएँ। युग ऋषि द्वारा अपने प्रचण्ड तप से युगतीर्थ में जाग्रत् दिव्य अखण्ड ऊर्जा प्रवाह को हर कदम पर अनुभव करते चलने का प्रयास करें।

दीप दर्शन के समय भाव करें 'हे दीप देव! आपको प्रणाम। अखण्ड साधना की अखण्ड ऊर्जा की प्रतीक हे पुण्य ज्योति! हमें आशीर्वाद दें। युग ऋषि द्वारा दी गई साधना के प्रति हमारी लगन- 'लौ' भी आपकी तरह अखण्ड रहे।' ज्योति किरण के साथ दिव्य ज्योति का आशीर्वाद प्राप्त होने का बोध करें।

यज्ञ-अग्निहोत्र :- यजुर्वेद में कहा गया है "देवों ने यज्ञ से ही यज्ञ का यजन किया।" यज्ञ के समय भाव रखें :-

यज्ञ कुण्ड में यज्ञार्थ अग्निदेव विराजमान हैं। कुण्ड में स्थापित हर समिधा ने अपने अन्दर सन्निहित ऊर्जा यज्ञ देव को सौंप दी है, उसी से यज्ञ का क्रम सतत-अबाध चल रहा है। युग ऋषि ने इस युग सृजन यज्ञ के लिए यज्ञीय ऊर्जा स्थापित की है। हम उस यज्ञ कुण्ड में समर्पित एक समिधा के रूप में स्थापित हैं। हमारे काय-कलेवर में जो जीवन ऊर्जा है, उसे हमने इस दिव्य ऊर्जा चक्र में मिला दिया है।

यह हवन सामग्री भी यज्ञ रूप है। प्रकृति के सान्निध्य से अपने लिए तैयार हैं। हम भी प्रकृति के अनुग्रह से प्राप्त अपनी दिव्य विचारणाओं, भावनाओं, विभूतियों, क्षमताओं को होमने हेतु तैयार होकर बैठे हैं।

इस प्रकार स्वयं को यज्ञ रूप अनुभव करते हुए, यज्ञीय भाव से यज्ञाग्नि में आहुतियाँ प्रदान करें। हर आहुति के साथ 'इदं न मम्' कहते हुए यज्ञ देव से प्रार्थना करें कि सहज जीवन में परमार्थ यज्ञ के समय यह यज्ञीय 'इदं न मम्' का भाव स्थायी रूप से बना रहे।

प्रज्ञापेय :–यज्ञ से लौटकर प्रज्ञापेय ग्रहण करते समय भी कल्कामृत सेवन जैसा ही भाव बनाकर रखें।

अनुलोम विलोम प्राणायाम ((प्रातः ८.०० से ८.१५))

अनुलोम विलोम प्राणायाम का अभ्यास साधकों के लिए बहुत ही शक्तिशाली होता है। इस प्राणायाम के द्वारा मन एकाग्र होता है। आज्ञाचक्र का जागरण होता है। इससे इड़ा–पिङ्गला नाड़ियों का शोधन होता है तथा प्राणों का सन्तुलन बनाने में सहायता मिलती है।

ध्यानात्मक आसन में बैठें। बायें नथुने से गहरी श्वास खींचें, भाव करें कि श्वास नासिका मार्ग से ऊपर भ्रूमध्य तक जाती है। थोड़ी देर श्वास रोकें, आज्ञाचक्र में प्रकाश का ध्यान करें। जितनी देर आसानी से श्वास रोक सकें, रोकें, तत्पश्चात् दायें नथुने से श्वास बाहर निकाल दें। थोड़ी देर श्वास को बाहर रोकें। आज्ञाचक्र में प्रकाश का ध्यान करें। इसके बाद दाहिने नथुने से पूरक करें और बायें से रेचक करें।

जप साधना (प्रातः ८.१५ से ९.००)

इस साधना क्रम में जप का कोई संख्या परक अनुबन्ध नहीं रखा गया है। मन्त्र जप साधना के लिए मात्र ४५ मिनट का समय निर्धारित है। यों अभ्यासवश या स्व रुचि से अन्य समय गायत्री महामन्त्र अथवा सोऽहं का अजपा जप चलता रहे, तो ठीक है। निर्धारित ४५ मिनट में प्रयास यह किया जाता है कि जप में भावना विह्वलता बढ़े, अधिक गम्भीरता–गहराई का समावेश हो।

मन्त्र जप का उद्देश्य होता है–मन्त्र के स्थूल, सूक्ष्म स्पन्दनों को अपने कायकलेवर की गहराइयों, विभिन्न कोशों तक झंकृत किया जाय। साज के तार को किसी एक स्थान पर झंकृत किया जाता है, घण्टे पर किसी एक स्थान पर हलकी–सी चोट की जाती है और उस पूरे साज में जगाये

गये स्वर कम्पन (फ्रीक्वेंसी) स्पन्दित हो उठते हैं। इसी प्रकार जीभ से, कण्ठ से मन्त्र को छेड़ा भर जाता है, उसे फिर पूरे साज, पूरे कलेवर में झंकृत होना चाहिए।

उपांशु जप, वैखरी वाणी से उत्पन्न कम्पन पहले अन्नमय कोश में स्पन्दित होते हैं। जब यह चक्र चल पड़ता है, तो शरीर का हर कोश जप के साथ स्पन्दित होता अनुभव होता है। क्रमश: जब उसके साथ शरीरस्थ प्राण स्पन्दित होने लगते हैं, तब उसके साथ एक उत्साह की लहर जुड़ जाती है। जब मन स्पन्दित होने लगता है, तो रोम-रोम पुलकित हो उठता है। इस स्थिति में पहुँचकर जप की तरंगें विज्ञानमयकोश को झंकृत करने लगती हैं, तो मन्त्र जप का प्रभाव विभिन्न चक्रों-केन्द्रों, उपत्यिकाओं पर पड़ने लगता है। विज्ञानमय कोश के स्पन्दित होने पर आनन्दमय कोश पर मन्त्र की चोट पड़ने लगती है। उससे परमानन्द की अनुभूति कराने वाले स्पन्दन उभरने लगते हैं।

जप-साधना की निर्धारित अवधि में यही प्रयास किया जाना चाहिए कि मन्त्र-जप के दिव्य स्पन्दन क्रमश: विभिन्न कोशों की गहराइयों में उतरते चले जाएँ। मन्त्र के स्पन्दन जिन-जिन कोशों में झंकृत होने लगते हैं, उनके परिशोधन एवं परिपोषण हेतु ब्राह्मी चेतना की सक्रियता बढ़ जाती है।

जप के साथ ध्यान:- जप करते समय ध्यान इस प्रकार करें- हमारे भाव भरे आवाहन को स्वीकार करते हुए हमारे इष्ट दिव्य ब्राह्मी चेतना ने, सविता के स्वर्णिम् प्रकाश के रूप में हमें सब ओर से आवृत कर लिया है। मन्त्र जप से उभरने वाले मंत्र के स्पन्दन पूरे शरीर में फैलकर उस दिव्य प्रकाश के साथ एकात्मता स्थापित करने में सहायक हो रहे हैं। इष्ट के दिव्य स्नेह भरे स्पन्दन, हमारे मन्त्र स्पन्दनों के साथ हमारे पूरे काय-कलेवर में पहुँचकर अपना प्रभाव डाल रहे हैं। शरीर का हर अंग-अवयव, हर कोश उससे प्रभावित-अनुप्राणित हो रहा है।

इस क्रम में अपना ध्यान शरीर के जिस भाग की ओर जाये, वही इन दिव्य स्पन्दनों को सञ्चरित-सक्रिय होता अनुभव करें। यह स्पन्दन जहाँ सञ्चरित होते हैं, वहाँ विकारों को धो-बुहार कर कहीं दूर हटा देते हैं और ब्राह्मी चेतना के स्वस्थ प्राण-प्रवाह एवं संस्कारों को स्थापित करते रहते हैं। शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि, चित्त-सभी में यह दिव्य सञ्चार प्रक्रिया चालू है। कहीं अन्यत्र भी ध्यान जाए, तो वहाँ भी यही प्रक्रिया फलित होती अनुभव करें।

प्रारम्भ में जप की गति थोड़ी धीमी रखें। जब स्पन्दन अपने काय-कलेवर में सञ्चरित होते अनुभव होने लगें, तो अपने जप की स्वाभाविक गति बनने दें।

जप काल समाप्त होने पर इष्ट चेतना के अनुग्रह के प्रति अपनी कृतज्ञता एवं प्रसन्नता का भाव मन ही मन व्यक्त करें। त्रुटियों के लिए क्षमा माँगते हुए विसर्जन करें। **सूर्य को अर्घ्य** (प्रत्यक्ष या भावनात्मक) प्रदान करें। भावना करें-हे सूर्यदेव! आपको अर्पित जल, सङ्कीर्ण पात्र की सीमा से बाहर निकल कर आपके प्रभाव से विराट् में फैल जाता है। हमारे इस काय-कलेवर में सीमित भावना, विचारणा एवं क्षमता को भी इसी प्रकार विराट् रूप दे दें।

नादसाधना (प्रातः ९.०० से ९.३०)

शरीर को एकदम पूरी तरह शिथिल कर दें। जो नाद प्रसारित हो रहा है, उसे शरीर, मन, बुद्धि, चित्त में झंकृत-तरंगित होने दें। अनुभव करें कि यह नाद विराट्-सनातन नाद ब्रह्म का एक अंश है। यह अपने साथ हमारे लिए दिव्य संवेदनाएँ, स्नेह की अभिव्यक्ति, अनुभूति आदि लेकर आया है। हम अपने व्यक्तित्व में ब्राह्मी चेतना के सञ्चरण के लिए जो साधनाएँ कर रहे हैं, उसके लिए स्नेहपूर्वक प्रेरणा-प्रोत्साहन आदि देने आया है। इसे अपने रोम-रोम, कण -कण में सञ्चरित-झंकृत होने दें। यह हमारे दिव्य आनन्द,

भूमिका

वरुण के पुत्र भृगु ने अपने पिता से प्रार्थना की " हे भगवन्! मुझे ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दीजिये।" वरुण ने उत्तर दिया–"हे भृगु! जिससे समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जीवित रहते हैं और अन्त में जिसमें विलीन हो जाते हैं, तू उस ब्रह्म को जानने की इच्छा कर।" पिता के आदेशानुसार पुत्र ने उस ब्रह्म को जानने के लिए तप आरम्भ कर दिया। दीर्घकालीन तप के उपरान्त भृगु ने अन्नमय जगत् (स्थूल संसार) में फैली ब्रह्म की विभूति को जान लिया। पुनः वे पिता के पास पहुँचे। उनने फिर कहा–"तमसो ब्रह्म विजिज्ञासव तपो ब्रह्मेति" अर्थात् हे पुत्र ! तू तप करके ब्रह्म को जानने का प्रयत्न कर। पुनः तप कर भृगु ने प्राणमय जगत् की विभूति को जाना और वह फिर पिता के पास पहुँचा। क्रमशः उस क्रम में तप करते हुए उसने मनोमय, विज्ञानमय और अन्त में आनन्दमय जगत् की विभूति को जान लिया। तैत्तिरीयोपनिषद् की तृतीय वल्ली का पाँचवाँ मन्त्र कहता है–"उस भृगु ने जाना कि आनन्द ही ब्रह्म है। आनन्द से ही सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं।"

पञ्चकोशों के जागरण की प्रक्रिया को इस कथानक के माध्यम से समझा जा सकता है। पञ्चमुखी गायत्री की साधना पञ्चकोशों के जागरण की साधना है। गायत्री साधना ऐसा परमार्थ भरा तप है जो हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को सुख, शान्ति और समृद्धि से भर देता है। अन्तःऊर्जा जागरण की साधना प्रकारान्तर से पञ्चकोशों के जागरण की उच्चस्तरीय गायत्री साधना है। इसमें अन्नमय कोश का परिष्कार विशेष हविष्यान्न का आहार करता है, तो सोऽहम् साधना एवं प्राणायाम प्राणमय कोश की जागृति की प्रक्रिया सम्पन्न करती है। त्राटक साधना (बिन्दुयोग) मनोमय कोश की जागृति हेतु सहायक बनती है। आत्मबोध–तत्त्वबोध की साधना से विज्ञानमय कोश जाग्रत् होता है। स्वाध्याय–पूज्यवर की अमृतवाणी इसको और पोषण देते हैं। नादयोग की साधना से आनन्दमय कोश जाग्रत् होता है। जप के साथ ध्यान एवं जप में गहराई से इसमें और मदद मिलती है।

प्राण प्रत्यावर्तन की ही तरह अन्तःऊर्जा जागरण साधना का साधक के व्यक्तित्व के परिष्कार एवं उच्चस्तरीय साधनात्मक उत्कर्ष के निमित्त निर्धारण किया गया है। यदि ये साधनाएँ सही ढंग से की जायँ– हर प्रक्रिया में पूरा मन लगाकर भावविह्वल होकर यह क्रम सम्पन्न हो, तो पाँच दिन में आध्यात्मिक कायाकल्प जैसी अनुभूति होती है।

शान्ति, सन्तोष का सहज बोध कराने आया है। हमारा समस्त व्यक्तित्व इसी में डूब गया है, संस्कारित और आनन्दित हो रहा है।

नाद समाप्त हो जाने पर उसी स्थिति में थोड़ी देर धीरे-धीरे गहरा श्वास-प्रश्वास करें और शरीर को लौकिक चेतन जगत् के लिए जाग्रत् अवस्था में आने का समय दें। फिर थोड़ी देर सहज श्वास-प्रश्वास के साथ टहलें तब अगले किसी कार्य में लगें।

अमृतवाणी -आत्म समीक्षा (प्रातः९.३० से १०.१५)

प्राणायाम समाप्त होने के बाद पू.गुरुदेव के प्रवचन का एक अंश प्रसारित होगा। उसे उसी भाव से सावधानी से सुनें, मानो पू.गुरुदेव स्वयं सामने बैठकर उपदेश दे रहे हैं। लगभग २० मिनट प्रवचन एवं शेष समय उनके उद्‌बोधन को मनन-चिन्तन द्वारा आत्मसात् करने में लगाएँ। उपदेश के कुछ सूत्र कम से कम आज के लिए जीवन सूत्रों के रूप में याद रखने का प्रयास करें, जब खाली समय मिले, उनको हृदयंगम करने के लिए मनन-चिन्तन का क्रम चलाएँ।

अन्य दैनन्दिन क्रम (मध्याह्न १०.१५ से १२.००)

जीवन साधना के क्रम में जीवन की हर क्रिया-प्रक्रिया साधकोचित योग युक्त होनी चाहिए। इसीलिए पू० गुरुदेव ने कहा है कि जीवन साधना तो पूरे २४ घण्टे चलती है। गीता में स्थितप्रज्ञ के लक्षण पूछते हुए अर्जुन ने भी जिज्ञासा प्रकट की, कि 'वह किस तरह बोलता, बैठता या गतिशील होता है।' भाव यही है कि साधक की अन्तःचेतना जब ईश्वरोन्मुख होती है, तो उसके द्वारा सञ्चालित हर क्रिया भी ईश्वरार्थ ही होती है। अस्तु, इस गहन साधना की अवधि में हर क्रिया के पीछे सन्निहित प्रेरक भाव या चिन्तन योगोन्मुख ही होना चाहिए। इस दृष्टि से भोजन, विश्राम, स्वच्छता आदि के लिए जो विराम काल हैं, उस समय भी साधक को सम्बन्धित चेष्टा करते समय तदर्थ ध्यान की स्थिति में रहने का प्रयास करना चाहिए। जैसे:-

भोजनः- यह सामान्य आहार नहीं है, दिव्य प्रसाद है। अन्न शाक आदि लाने, तैयार करने, पकाने आदि के क्रम में यह दिव्य भावों, तीर्थ चेतना के स्पन्दनों से ऊर्जित (चार्ज) होता रहा है। इसके माध्यम से तीर्थ चेतना, गुरु सत्ता ने हमारे स्थूल कोशों को एवं मन को संस्कारित एवं पुष्ट करने के लिए दिव्य ऊर्जा-अनुदान भेजे हैं। ऐसा भाव करते हुए स्वयं उसे इष्ट के लिए नैवेद्य रूप में अर्पित करें। फिर शरीरस्थ जठराग्नि में इस हव्यान्न की आहुतियाँ समर्पित करने के भाव से प्रसाद सेवन करें। यह मानें कि इस आहार की मात्रा से अधिक इसकी गुणवत्ता है। अतः जितना हमारी साधना हेतु निर्धारण किया गया है, उतना ही हम ले रहे हैं।

विश्रामः- इस समय यह भाव रखें कि साधना एवं आहार ग्रहण करते समय जो दिव्य प्रसाद विभिन्न रूपों में प्राप्त हुआ है, उसे पचाने, आत्मसात् करने के लिए शरीरस्थ ऊर्जा को पूरी तरह कार्ययुक्त किया जा रहा है। मातृ सत्ता हमें अपनी गोद में विश्राम देकर पुनः नई ऊर्जा के साथ साधना-पुरुषार्थ करने के लिए तैयार कर रही है।

स्वच्छता:- कक्ष एवं अपने उपयोग के वस्त्रों, उपकरणों आदि को स्वच्छ करते समय भाव करें कि रोजमर्रा के जीवन में मलिनता जाने-अनजाने उभरती, उपजती, चिपकती रहती है, उसे प्रयासपूर्वक हटाकर स्वच्छता, निर्मलता बनाए रखना जरूरी होता है। हमारा जीवन, उससे जुड़े संसाधनों को निर्विकार, निर्मल बनाए रखना हमारे साधना पुरुषार्थ का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। हम उस कर्तव्य की पूर्ति या उस अभ्यास को प्रखर बनाने का साधकोचित पुरुषार्थ कर रहे हैं।

स्वाध्याय, मनन, चिन्तन (मध्या.12 से 1.00)

जीवन साधना का एक महत्त्वपूर्ण अंग स्वाध्याय भी है। जीवन साधना से सम्बन्धित जो ज्ञान उपलब्ध है, उसका अध्ययन करते हुए जब उसे 'स्व' पर घटित किया जाता है, तो स्वाध्याय बनता है। इन सत्रों में पूज्य

गुरुदेव द्वारा निर्दिष्ट साधना क्रम का अभ्यास किया जाता है। अस्तु, जीवन से सम्बन्धित उनके अनुभूत विचारों का अध्ययन, मनन, चिन्तन भी करते रहना उचित होता है। पूज्य गुरुदेव के जो विचार अमृतवाणी प्रसारण के क्रम में सुने गये हैं अथवा निर्धारित साहित्य में से पढ़कर अपनी आवश्यकता के अनुरूप सूत्रों को हृदयंगम करने का प्रयास किया जाना चाहिए। विचार जिस उद्देश्य के लिए जिस गहराई के साथ व्यक्त किये गये हैं, उस तक पहुँचने का प्रयास करने से 'अध्ययन' बनता है। वे सूत्र अपने जीवन के साथ कहाँ-कैसे जुड़ते हैं ? यह समीक्षा करने से 'मनन' होता है। हम जहाँ हैं, वहाँ से अगले स्तर तक पहुँचने के लिए विचारों को कार्य योजना का स्वरूप देने से, चिन्तन, सिद्ध होता है। इस प्रकार निर्धारित समय में अध्ययन, मनन, चिन्तन की त्रिवेणी में गहरी डुबकियाँ लगाते रहने का प्रयास करते रहना चाहिए।

भ्रामरी प्राणायाम (दोपहर १.०० से १.१५ तक)

भ्रामरी प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य मानसिक शान्ति की प्राप्ति है। प्राणायाम का साधारण लाभ भी उसमें है और अन्य प्राणायामों की तरह फेफड़ों को भी उससे शक्ति प्राप्त होती है। इस प्राणायाम के अभ्यास में भ्रामरी का शब्द सुनते-सुनते ओंकार और अन्य प्रकार के दिव्य शब्द भी सुनाई पड़ने लगते हैं, जिससे मन की शान्ति और तन्मयता की बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है।

ध्यानात्मक आसन में बैठें। दोनों हाथों की तर्जनी उँगलियों से कानों को बन्द कर लें। दोनों नथुनों से गहरी श्वास खींचें। भौंरे के गुञ्जन की तरह गहरी और मन्द ध्वनि उत्पन्न करते हुए धीरे-धीरे श्वास बाहर छोड़ें। श्वास छोड़ते समय गुञ्जन की ध्वनि मधुर, सम और अखण्ड होनी चाहिए। ध्वनि इतनी मृदुल और मधुर हो कि कपाल के अग्र भाग में उसकी प्रतिध्वनि गूँजने लगे।

सोऽहं साधना (मध्या. १.१५ से १.३०)

जैसे जप-साधना के पूर्व स्वयं को दिव्य चेतना से आवृत अनुभव किया था, वैसा ही पुनः ध्यान करें। अब मन ही मन सङ्कल्प करें, हम इस काय-कलेवर में स्थित इसी दिव्य चेतना के अंश हैं। अंश अपने अंशी से विलग होकर दीन-दुखी होने लगता है। यह विलगता जड़ पदार्थों के सान्निध्य के कारण आई है। वस्तुतः जो यह शुद्ध, दिव्य विराट् चेतना है, वही हम हैं। सोऽहं साधना तीर्थ चेतना की गोद में बैठकर गुरुचेतना के संरक्षण-मार्गदर्शन में कर रहे हैं।

अब गहरी श्वास बलपूर्वक खींचें, वायु के घर्षण से जो ध्वनि उभरती है, वह 'सो' के अनुरूप होती है। इस ध्वनि को ही अपने द्वारा किया गया 'सो' उच्चारण मानें। जितने समय 'सो' की ध्वनि उभरी, उतना ही समय लगाते हुए बलपूर्वक श्वास बाहर फेंकें। जो ध्वनि उभरती है, वह 'हं' से मिलती-जुलती होती है। इसे ही अपने द्वारा किया गया 'हं' का उच्चारण मानें।

यह क्रम बिना रुके चालू रखें। श्वास खींचने के साथ 'सो' और छोड़ने के साथ 'हं' का अजपा जप होने दें। इस क्रम में श्वास विभिन्न प्रकार से लें, जैसें लम्बी-गहरी, धीरे-धीरे, छोटी-उथली (जल्दी-जल्दी), मध्यम गति (दोनों क्रमों के बीच की लम्बाई और गहराई) आदि; किन्तु हर श्वास और प्रश्वास में समय समान रहे अर्थात् जितने समय में खींचें, उतने ही समय में बाहर फेंकें। खींचते समय 'सोऽ' और छोड़ते समय 'हं' की ध्वनि पर बराबर ध्यान रखें। अपनी अन्तः अनुभूति के अनुसार श्वास की लय को बदलते रहें।

हर श्वास-प्रश्वास में सोऽहं का अजपा जप करते हुए भाव करें कि सो ध्वनि के साथ वह दिव्य प्राण आदि-चेतन धारा अन्दर प्रवेश कर रही है। हर प्रश्वास में 'हं' की ध्वनि के साथ अन्दर का अहं सीमित-मलिन प्राण बाहर फेंका जा रहा है। 'सोऽहं' जप अथवा श्वास- प्रश्वास की क्रिया के

साथ हमारे काय-कलेवर में, हमारे व्यक्तित्व में विकृत अहं घट रहा है, वह दिव्य चेतन बढ़ रहा है। क्रमशः जो वह है, वही हम होते जा रहे हैं। 'सोऽहं' जप सार्थक होता जा रहा है।

श्वास-प्रश्वास का प्राण-प्रवाह काय-कलेवर के हर अंग, व्यक्तित्व के हर पक्ष में प्रवाहित करने का सङ्कल्प करें। शरीर के हर अंग-पैर की अंगुलियों से लेकर सिर तक हर अंग के रस, रक्त, मांस, अस्थि, हर कोश में उसे प्रवाहित-सञ्चरित करें। इसके लिए शरीर को हिलाना-डुलाना, विभिन्न मुद्राओं में ले जाना उपयोगी लगे, तो वैसा होने दें; लेकिन श्वास-प्रश्वास को सतत सङ्कल्पपूर्वक विभिन्न लय-ताल क्रमों से सतत चलाते रहें तथा उसके साथ उभरने वाली ध्वनियों के साथ सोऽहं का भाव करते रहें। यदि श्वास घर्षण से उत्पन्न ऊर्जा के कारण शरीर अधिक उत्तेजना का अनुभव करने लगे, तो श्वास को एकदम सहज कर दें और उसी के साथ सोऽहं का भाव बनाए रखें। सारे क्रम में यह भाव बनाए रखें कि तीर्थ चेतना, गुरुसत्ता हमारी हर क्रिया पर ध्यान देकर उसके संशोधन-सन्तुलन का क्रम निभा रही है।

सोऽहं साधना के बाद अगला क्रम नाद साधना का है। सोऽहं साधना पूरी होते-होते किसी आरामदायक मुद्रा में बैठ या लेट जाएँ एवं नाद योग में प्रवृत्त हो जाएँ।

ज्योति अवधारणा (मध्याह्न १.३० से १.४५ तक)

त्राटक परम्परागत ढंग में किसी बिन्दु या ज्योति को अपलक दृष्टि से देखने का विधान होता है। इससे एकाग्रता और बेधक दृष्टि बढ़ती है। आज्ञाचक्र को उद्दीप्त करने में भी इसका प्रयोग किया जाता है; लेकिन त्राटक की इस परम्परागत विधि में आँखें लाल हो जाती हैं। दृष्टि ऊर्जा के अनगढ़ या हीन उपयोग की सम्भावनाएँ भी बढ़ जाती हैं। इसलिए पूज्य गुरुदेव ने अन्तः त्राटक की निरापद साधना साधकों के लिए प्रस्तुत की है। इससे

साधकों की एकाग्रता तो बढ़ती ही है, अन्त: ज्योति का बोध भी क्रमश: होने लगता है।

➢ किसी उपयुक्त आसन में मेरुदण्ड सीधा करके बैठें। सामने किसी चौकी पर प्रज्वलित दीपक, मोमबत्ती आदि अपने से एक से दो मीटर की दूरी पर रखें। ऊँचाई इतनी हो कि सीधी दृष्टि गर्दन झुकाए या उठाए बिना उसे सहज दृष्टि से देख सके। थोड़ी देर उसे खुली आँखों से देखें, फिर आँखें बन्द करके वही ज्योति भ्रूमध्य-आज्ञाचक्र में देखने का प्रयास करें। जब तक दिखे, देखते रहें। जब वह धूमिल होने लगे, तो पुन: आँखें खोलकर ज्योति दर्शन करें। यही क्रम दुहराते रहें।

➢ भाव करें कि यह ज्योति, विराट् ज्योति सूर्य का एक अंश है। इसी प्रकार हमारे अन्दर भी विराट् परमात्म-ज्योति का एक अंश आत्म ज्योति के रूप में है। जड़ पदार्थों से बने इस काय-कलेवर के अंग-प्रत्यंग में, हर कोश में, चेतन हलचल के रूप में यही आत्मज्योति प्रकाशित हो रही है। उसे हम अपने अन्दर गहराई से अनुभव करने का प्रयास कर रहे हैं।

➢ ज्योति का एक अंश हमारे आज्ञाचक्र में स्थिर हो रहा है। प्रज्ञा-दिव्यदृष्टि जाग रही है। जब ज्योति आज्ञाचक्र में स्थिर होने लगे, तो उसके बिम्ब अपने शरीर के हर अंग-उपांग, कोशों में प्रकाशित होते अनुभव करें। क्रमश: सारा काय-कलेवर दिव्य ज्योतियों से जगमगा रहा है, साधक ज्योति पुञ्ज बन गया है, ऐसा बोध होने दें।

आत्मदेव (दर्पण) साधना (अप.१.४५ से २.३०)

दर्पण को सामने इस प्रकार रखें कि उसके सामने बैठने पर सिर से कमर तक का बिम्ब उसमें स्पष्ट दिखाई दे। अपने बिम्ब को कुछ समय देखें। बिम्ब की स्थूल सीमा के चारों ओर एक तेजोवलय देखने का प्रयास

करें। फिर आँखें बन्द करके अपने चारों ओर तेजोवलय अनुभव करने का प्रयास करें। यह क्रम कुछ समय तक दुहराते रहें।

❋ विचार करें इस स्थूल शरीर के साथ अपना प्राण शरीर भी है, इसे ईथरिक डबल या छाया पुरुष भी कहते हैं। यह स्थूल शरीर की अपेक्षा अधिक क्षमता सम्पन्न होता है। भाव करें कि साधना के प्रभाव से उसकी सामर्थ्य क्रमशः बढ़ रही है।

❋ स्थूल काया के साथ जुड़ा जो चेतन है, वह बड़ा समर्थ एवं ज्ञानी-विज्ञानी है। वह हमारे अन्दर की सारी कमियों को और विशेषताओं को जानता है। कमियों को, दोषों को दूर करने तथा सुप्त क्षमताओं को जगाने में समर्थ है। हम अभी तक अपने अन्तः चेतना की ओर ध्यान नहीं देते रहे हैं, बाहरी दुनिया की ओर ही हमारा विशेष झुकाव रहा है; इसलिए वह रूठा हुआ है, हमसे बोलता नहीं। उसे मनाएँ, तो वह जीवन को क्या से क्या बना सकता है। सन्त कबीर ने उसी को लक्ष्य करके लिखा है-'**एक डाल दो पञ्छी बैठे, एक गुरु एक चेला**' वह जागे तो सद्गुरु की सच्ची भूमिका निभा सकता है।

इस सद्गुरु के सामने अपने सारे दोष, पाप खोलें। प्रार्थना करें तुम सब जानते हो, फिर क्यों नहीं इन्हें रोकते, नियन्त्रित करते ? अपने अन्दर की हर सदिच्छा को भी प्रकट करें तथा उसके लिए मार्ग-प्रशस्त करने की प्रार्थना करें।

अनुलोम विलोम सूर्यवेधन प्राणायाम-(अप. २.३० से २.४५ तक)

कुण्डलिनी महाशक्ति के जागरण के लिए प्राण ऊर्जा की प्रचुर परिमाण में आवश्यकता पड़ती है। यह प्रयोजन सूर्यवेधन प्राणायाम द्वारा पूरा होता है। प्राण ऊर्जा का अभिवर्द्धन साधक की भौतिक और आध्यात्मिक सफलताओं का मार्ग प्रशस्त करता है। यह मस्तक को शुद्ध करता है। वात रोग निवारक एवं कृमिनाशक है।

जिस आसन में सहजता से १५ मिनट बैठ सकें, उसमें मेरुदण्ड सीधा रख कर बैठिए। स्वयं को तीर्थ चेतना, गुरुसत्ता के दिव्य आभामण्डल से घिरा हुआ अनुभव कीजिए। प्राणायाम मुद्रा में बायाँ नथुना दबाकर दाहिने नथुने से श्वास खींचना आरम्भ कीजिए। ध्यान कीजिए कि सूर्य की किरणों जैसा प्रवाह वायु में सम्मिश्रित होकर दाहिने नासिका छिद्र में अवस्थित पिङ्गला नाड़ी द्वारा अपने शरीर में प्रवेश कर रहा है और उसकी ऊष्मा अपने भीतरी अंग-प्रत्यंगों को तेजस्वी बना रही है। श्वास को कुछ देर भीतर रोकिए और ध्यान कीजिए कि श्वास के साथ खींचा हुआ तेज नाभि चक्र में एकत्रित हो रहा है। सूर्य चक्र प्रकाशवान् हो रहा है। चमक बढ़ रही है। बाएँ नासिका से श्वास को बाहर निकालिए, भाव कीजिए कि सूर्यचक्र को धुँधला बनाए रखने वाला कल्मष छोड़ी हुई श्वास के साथ पीतवर्ण होकर बाएँ नथुने की इड़ा नाड़ी द्वारा बाहर निकल रहा है। सहजता से जितनी देर हो सके फेफड़ों को बिना श्वास के खाली कीजिए। भाव कीजिए नाभिचक्र में एकत्रित प्राणपुञ्ज अग्नि शिखाओं की तरह सुषुम्ना में ऊपर उठकर पेट के ऊर्ध्व भाग, फेफड़े, कण्ठ को प्रकाशित कर रहा है।

इसी क्रम को उलटा कीजिए अर्थात् बाएँ से खींचना, अन्दर रोकना, दाएँ से बाहर निकालना और बाहर रोक देना। श्वास खींचते समय भाव कीजिए कि सविता का तेज नाभिचक्र में संगृहीत हो रहा है। अन्तःकुम्भक में ध्यान कीजिए कि नाभिचक्र सूर्यचक्र तेजस्वी हो रहा है। श्वास निकालते समय भाव कीजिए कि आन्तरिक विकार वायु के साथ बाहर जा रहे हैं। बाह्य कुम्भक के समय ध्यान कीजिए कि सूर्यचक्र का निर्मल तेज सुषुम्ना मार्ग से ऊपर की ओर बढ़ रहा है, भीतरी अवयवों में एक दिव्य ज्योति जगमगाती अनुभव कीजिए।

दाएँ से खींचकर बाएँ से निकालना, पुनः बाएँ से खींचकर दाएँ से निकालना, अनुलोम-विलोम सूर्यवेधन प्राणायाम का एक चक्र पूरा हुआ,

ऐसे तीन प्राणायाम कीजिए। जो समय शेष रहे, उस समय सहज लयबद्ध श्वास के साथ शान्ति का अनुभव कीजिए।

अमृतवर्षा ध्यान- (अपराह्न २.४५ से ३.१५)

पूज्य गुरुदेव के ध्यान संकेतों के अनुसार ध्यान करें।

प्रज्ञापेय, स्वच्छता श्रमदान, स्वाध्याय (३.१५ से ५.००)

प्रज्ञापेय सेवन, स्वच्छता एवं स्वाध्याय के क्रम में पूर्ववत् प्रक्रिया अपनाएँ।

नाड़ीशोधन प्राणायाम (सायं ५.०० से ५.१५)

मनुष्य के रहन-सहन में अज्ञात अथवा प्रमादवश जो भूलें हो जाती हैं, उनके कारण शरीर में मलवृद्धि होती रहती है। यह मल देह के समस्त नाड़ी जाल को गन्दा और अवरुद्ध कर देता है। प्राणायाम के दौरान शुद्ध वायु खींचकर उसमें सम्मिलित प्राण शक्ति को रक्त के साथ मिलाकर उस मल को भस्म करके बाहर निकाल दिया जाता है। इस प्रकार नाड़ियों के शुद्ध होने से रक्त का प्रवाह अबाध गति से समस्त शरीर में होने लगता है और उसकी चैतन्यता, स्फूर्ति पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ जाती है।

सहज आसन में मेरुदण्ड सीधा करके बैठिए। प्राणायाम मुद्रा में दायाँ नथुना बन्द करके बायें नथुने से गहरी श्वास खींचिए और उसे नाभिचक्र तक ले जाइए। ध्यान कीजिए कि नाभि स्थान में पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के समान पीतवर्ण शीतल प्रकाश विद्यमान है। खींचा हुआ श्वास उसे स्पर्श कर रहा है। आसानी से जितना सम्भव हो श्वास भीतर रोकिए। ध्यान कीजिए, पूर्ण चन्द्र को खींचा हुआ श्वास स्पर्श करके स्वयं शीतल और प्रकाशवान् बन रहा है। जिस नथुने से श्वास खींचा था, उसी बाएँ छिद्र से ही श्वास बाहर निकालिए, ध्यान कीजिए लौटने वाली वायु इड़ा नाड़ी को शीतल प्रकाशवान् बना रही है। कुछ देर श्वास बाहर रोकिए और फिर से उपर्युक्त क्रिया बाएँ नथुने से ही तीन बार कीजिए।

जिस प्रकार बाएँ नथुने से पूरक, अन्तःकुम्भक, रेचक, बाह्य कुम्भक किया था; उसी प्रकार दाहिने नथुने से भी उपर्युक्त क्रिया तीन बार कीजिए। नाभिचक्र में चन्द्रमा के स्थान पर सूर्य का ध्यान कीजिए और श्वास छोड़ते समय भावना कीजिए, लौटने वाली वायु पिंगला नाड़ी के भीतर उष्णता व प्रकाश पैदा कर रही है।

अब नासिका के दोनों छिद्रों से श्वास लीजिए, भीतर रोकिए और मुँह खोलकर श्वास बाहर निकाल दीजिए। तीन बार बाएँ नासिका से श्वास खींचना-छोड़ना, तीन बार दाएँ नासिका से श्वास खींचना- छोड़ना तथा एक बार दोनों नासिका छिद्र से श्वास खींचना व मुँह से निकालना, यह सात विधान मिलकर एक नाड़ी शोधन प्राणायाम हुआ। ऐसे तीन प्राणायाम पूरे कीजिए शेष समय में सहज लयबद्ध श्वास के साथ शान्ति का अनुभव कीजिए।

मन्त्रजप (सायं ५.१५ से ५.४५)

पूर्व संकेतानुसार मन्त्रजप का क्रम चलायें।

खेचरी मुद्रा (सायं ५.४५से ६.००)

'ख' आकाश को कहते हैं। खेचरी मुद्रा द्वारा साधकगण आकाश में प्रवाहित अमृत प्रवाहों से जुड़कर उनका लाभ उठाते रहे हैं। हठयोग के अन्तर्गत खेचरी मुद्रा में जीभ को नासिका से आकर गले में खुलने वाली श्वास नली में प्रविष्ट कराने का विधान रहा है। इसके लिए जीभ की लम्बाई बढ़ानी पड़ती थी। जीभ के नीचे के तन्तु को धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा काट करके और जीभ को दोहन क्रिया जैसी मालिश करके लम्बा किया जाता था। परम पूज्य गुरुदेव ने इस क्रिया को भी सर्व सुलभ स्वरूप दिया है। इसमें सहज स्थिति में ही जीभ को पलट कर तालु के मुलायम वाले हिस्से भर से स्पर्श कराया जाता है। क्रम इस प्रकार है-

अन्त:ऊर्जा जागरण साधना सत्र दिनचर्या

प्रात:काल	०३.४५ से ०४.५०	जागरण, आत्मबोध, प्रार्थना
	०४.०० से ०५.००	नित्यकर्म, व्यायाम
	०५.०० से ०५.१०	शिथिलीकरण
	०५.१० से ०५.२५	उज्जायी प्राणायाम
	०५.२५ से ०५.४०	शक्तिचालिनी मुद्रा
	०५.४० से ०५.५०	प्राण सञ्चार प्राणायाम
	०५.५० से ०६.२५	पञ्चकोश जागरण ध्यान
	०६.२५ से ०८.००	अखण्डदीप दर्शन, हवन, प्रज्ञापेय
	०८.०० से ०८.१५	अनुलोम विलोम प्राणायाम
	०८.१५ से ०९.००	मन्त्र जप
	०९.०० से ०९.३०	नादयोग, ओंकार ध्यान
	०९.३० से १०.१५	अमृतवाणी, आत्मसमीक्षा
मध्याह्न	१०.१५ से ०१.००	भोजन प्रसाद, विश्राम, स्वाध्याय
	०१.०० से ०१.१५	भ्रामरी प्राणायाम
	०१.१५ से ०१.३०	सोऽहम्
	०१.३० से ०१.४५	ज्योति अवधारणा
	०१.४५ से ०२.३०	दर्पण साधना, आत्मसमीक्षा
अपराह्न	०२.३० से ०२.४५	अनुलोम विलोम सूर्यवेधन प्राणायाम
	०२.४५ से ०३.१५	अमृत वर्षा ध्यान
	०३.१५ से ०५.००	प्रज्ञापेय, स्वच्छता श्रमदान, स्वाध्याय
सायंकाल	०५.०० से ०५.१५	नाड़ीशोधन प्राणायाम
	०५.१५ से ०५.४५	मन्त्र जप
	०५.४५ से ०६.००	खेचरी मुद्रा
	०६.०० से ०६.१५	नादयोग
	०६.१५ से ०७.००	भोजनप्रसाद
	०७.००से ०७.१५	सहजलयबद्ध श्वास प्रश्वास
	०७.१५ से ०८.१५	अमृतवाणी, आत्मसमीक्षा

नोट:- अन्तिम दिन प्रात: समापन सङ्कल्प एवं भोजन प्रसाद 11 बजे तक

* सहज आसन में मेरुदण्ड सीधा करके बैठें। आँख बन्द करके ध्यान करें। आकाश में अमृत प्रवाह की अगणित धाराएँ सञ्चरित हो रही हैं। सूर्यादि नक्षत्र, पृथ्वी, वृक्ष, वनस्पति, जीव जगत् सभी उन्हीं प्रवाहों के आधार पर विकसित और पुष्ट होते रहते हैं। वही अमृत प्रवाह विभिन्न शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध आदि के रूप में प्रकट एवं भासित हो रहा है।

* उस दिव्य अमृत प्रवाह को हम भी ग्रहण कर सकते हैं। हमारी इन्द्रियाँ और प्रवृत्तियाँ केवल बाहरी और निचली सतह से रसानुभूति प्राप्त करने की अभ्यस्त हैं। इनकी बहिर्मुखी एवं अधोगामी वृत्तियों को अन्तर्मुखी एवं ऊर्ध्वमुखी बना लें, तो उच्चस्तरीय अमृत प्रवाहों का लाभ हम भी प्राप्त कर सकते हैं। इसी क्षमता को जाग्रत्-विकसित करने के लिए खेचरी मुद्रा का प्रयोग हम कर रहे हैं।

* जीभ को सभी इन्द्रियों का प्रतिनिधि मानकर उसे उलट कर तालु के मूर्धा भाग (जहाँ से तालु का कोमल भाग प्रारम्भ होता है) से स्पर्श करें। भावना करें कि हमारे मस्तिष्क मध्य में स्थित सहस्रार चक्र आकाशस्थ दिव्य प्रवाहों को ग्रहण करने में समर्थ, सक्षम है। हमारे भाव सङ्कल्पों के आधार पर वह उन अमृत प्रवाहों को पकड़ कर सञ्चरित कर रहा है। जीभ के साथ हमारी सारी इन्द्रियाँ और प्रवृत्तियाँ उसे ग्रहण करने के लिए अन्तर्मुखी-ऊर्ध्वमुखी हो रही हैं। उनके माध्यम से अमृत प्रवाह हमारे सारे शरीर में फैल रहा है, प्रत्येक अंग-प्रत्यंग, कोश आदि को प्रभावित कर रहा है।

* जीभ से तालु के मूर्धा भाग को धीरे-धीरे सहलाते रहें। जैसे बछड़ा अपनी जीभ से गाय के थनों को सहलाता है, तो उसका दूध उतरने लगता है। इसी प्रकार हम मस्तिष्कीय तन्त्र के माध्यम से दिव्य प्रकृति माता का अमृत रसपान कर रहे हैं, ऐसा भाव करें। जीभ थकने लगे, तो थोड़ी देर सहज स्थिति में ले आएँ और पुनः उसी मुद्रा में ले जाएँ; लेकिन इसी बीच अपनी सारी वृत्तियों को ऊर्ध्वमुखी रखकर आकाश में उतरने वाले अमृत

प्रवाह का आस्वादन करने का भाव सतत बनाए रखें। स्थूल क्रिया के कारण कभी-कभी जीभ को विभिन्न रसों का स्थूल स्वाद भी मिल सकता है। वह कोई जरूरी या बहुत उपयोगी नहीं। उस पर ध्यान न दें। सूक्ष्म दिव्य प्रवाह पाने का भाव रखें। जैसे बिजली विभिन्न उपकरणों में प्रवाहित होकर उनके अनुरूप विभिन्न उत्पाद पैदा करती रहती है, उसी प्रकार यह अमृत प्रवाह काया के विभिन्न संस्थानों में जाकर उन्हीं के अनुरूप बनकर उन्हें तृप्त, तुष्ट, पुष्ट कर रहा है, यह भाव जाग्रत् रखें।

नादयोग-२ (सायं ६ से ६.१५)

इस नादयोग के पूर्व वन्दनीया माताजी के स्वर में जो निर्देश दिये जाते हैं, उन्हें हृदयंगम करते हुए तदनुरूप भाव बनाएँ। प्रसारित नाद के स्पन्दनों के साथ लय होने का प्रयास करें।

भोजनादि (सायं ६.१५ से ७.००)

पूर्व संकेतों के अनुसार प्रसाद रूप भोजन लें।

लयबद्ध श्वास (सायं ७.०० से ७.१५)

भोजनोपरान्त थोड़ी देर वज्रासन में बैठें या धीरे-धीरे टहलें। इसी के साथ श्वास को लयबद्ध करने का प्रयास करें। लयबद्ध श्वास में चार क्रियाएँ की जाती हैं। पूरक, अन्तःकुम्भक, रेचक एवं बाह्य कुम्भक। पूरक एवं रेचक में समान समय लगाया जाता है। पूरक या रेचक में लगने वाले समय से आधा-आधा समय अन्तः एवं बाह्य कुम्भक के लिए लगाया जाता है। अपनी स्थिति के अनुरूप गति से एक से आठ तक की गिनती पूरी करते हुए पूरक एवं रेचक करें। उसी लय-ताल के साथ एक से चार तक की गिनती पूरी करते हुए अन्तः एवं बाह्य कुम्भक करें। गिनती के स्थान पर ॐ या राम जैसे मन्त्रोच्चार को भी लयबद्ध श्वास के लिए माध्यम बनाया जा सकता है।

प्रारम्भ में यह क्रिया अपनी सुविधानुसार लय-गति बनाकर की जाती है। बाद में तनाव हीन स्थिति में अपने हृदय की धड़कन, नाड़ी की

गति को एक इकाई मानकर ८, ४, ८, ४ के क्रम से पूरक, अन्त:कुम्भक, रेचक एवं बाह्य कुम्भक का क्रम चलाया जाता है। इसके लिए सहज स्थिति में अपनी नाड़ी या हृदय धड़कने की गति को भली प्रकार आत्मसात् कर लिया जाता है। बाद में उसी लय से श्वास-प्रश्वास की क्रिया चलाई जाती है।

इस प्रक्रिया में ध्यान नासाग्र पर, आते-जाते श्वास पर (साक्षी भाव की तरह) ही केन्द्रित रखा जाता है। मन-मस्तिष्क को विचारों-सङ्कल्पों से खाली रखने का प्रयास किया जाता है। साधना काल में या वैसे भी खाली समय में लयबद्ध श्वास का अभ्यास करने से मन शान्त होता है तथा प्राण शक्ति का संवर्धन होता रहता है।

अमृतवाणी-आत्मसमीक्षा (सायं ७.१५ से ८.१५)

पूर्व संकेतानुसार श्रद्धापूर्वक श्रवण, मनन, चिन्तन का क्रम चलाएँ।

तत्त्वबोध (सायं ८.१५ से ८.५०)

तत्त्वत:जीव और परमात्मा में भेद नहीं है; किन्तु मायावश प्राणी ईश्वर के स्थान पर संसार से ममता जोड़ लेता है। यह ममता मोह में बदल कर इतनी जटिल हो जाती है कि अन्तिम समय भी ईश्वर के स्थान पर संसार ही याद आता है। सन्त तुलसीदास जी ने इसीलिए लिखा है "**कोटि कोटि मुनि जतन कराहीं, अन्त राम कहि आवत नाहीं।**" कारण यही है कि जीवन भर का अभ्यास तो संसार के पक्ष में झुकने का बना रहा, ऐसे में अन्त समय में ज्ञानीजन कितना भी उपदेश करें, अपना चित्त तो उसी ओर झुकता है जिस ओर झुकने की उसे लत पड़ गई है। इस विसंगति से बचने के लिए पू. गुरुदेव ने तत्त्वबोध की साधना का अभ्यास करते रहने का निर्देश दिया है।

सर्वदा रात में नींद की गोद में जाते समय जीवन-संसार का अवसान होता है। मनुष्य जाग्रत् अवस्था से स्वप्न अवस्था में, दृश्य लोक से स्वप्न लोक में चला जाता है। प्रतिदिन जीवन के समापन की इस वेला में यदि संसार से मोह हटाकर परमात्मा की गोद में जाने का अभ्यास किया जाता रहे, तो इस

जीवन में एवं देह त्याग कर मरणोत्तर जीवन में जाने के क्रम में इस साधना के अनेक लाभ मिलते रहते हैं। जैसे:-

१. मनुष्य लौकिक सम्बन्धों से ऊपर उठकर स्वयं को शरीर से भिन्न अनुभव करने लगता है।

२. लौकिक जीवन के सारे तनावों, दबावों से मुक्त होकर समुचित विश्राम का लाभ उठा पाता है।

३. नित्य अपने जीवन की समीक्षा करते हुए व्यर्थ के अहंकार से बचकर, श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम जीवन की ओर अग्रसर होता रहता है।

४. ईश्वर की सौंपी दुनिया और उससे सम्बन्धित जिम्मेदारियाँ ईश्वर को सौंप कर प्राणी सहज भाव से परमात्म चेतना में प्रवेश पाने की स्थिति में पहुँच जाता है।

५. हमेशा की नींद, भोग-निद्रा के स्थान पर क्रमश: योग-निद्रा का स्वरूप लेने लगती है। मनुष्य अगली सुबह पूर्ण विश्राम से मिली ताजगी और परमात्मचेतना के सान्निध्य से मिली ऊर्जा के साथ नये जीवन की उत्साह-उल्लास भरी यात्रा के लिए तैयार हो उठता है।

क्रम:-सारे कार्यों से निवृत्त होकर शय्या पर शान्त भाव से कमर सीधी करके बैठें। गुरुसत्ता, इष्ट चेतना का ध्यान करें। आज सबेरे नया जीवन उन्हीं से प्राप्त करके क्रम प्रारम्भ किया था। प्रात: किये गये वादे, सङ्कल्प के अनुसार दिन भर कहाँ-कहाँ असफल एवं कहाँ-कहाँ सफल रहे, इसकी समीक्षात्मक रिपोर्ट उनके सामने प्रस्तुत करें।

भूलों के लिए पश्चात्ताप करें, प्रायश्चित्त का भाव लाएँ। तत्परता के लिए स्वयं को शाबाशी दें और गुरुसत्ता से अगले चरण का पथ प्रशस्त करने की प्रार्थना करें।

निवेदन करें :- आपका दिया जीवन, आपकी दी हुई शक्ति से आपके अनुशासन के अनुरूप, साधकोचित ढंग से जीने का प्रयास हमने किया। अब यह जीवन सारी सफलताओं, असफलताओं सहित

आपको वापस सौंपते हैं। यह प्रार्थना करते हुए एक-एक करके संसार, समाज, व्यवसाय, परिवार, शरीर, मन एवं अन्त:करण परमात्मा को सौंप दें। स्वयं को शरीर से पृथक् अनुभव करें, भावना करें कि यह शरीर निर्जीव हो गया। अब यदि कोई परिजन या जंगली पशु इस हालत में पाएँ, तो क्या करेंगे......। स्वयं को काया से भिन्न स्थिति में अनुभव करते हुए परमात्म सत्ता से निवेदन करें "आपका दिया सब कुछ आपको सौंप कर हम हलके हो गए। **अब हम निश्चिन्त होकर आपकी गोद में विश्राम के लिए, आत्म-विसर्जन के लिए तैयार हैं, हमें इसका अवसर दें। यदि अगला जीवन दें, तो हमारे तन्त्र को अब से बेहतर- श्रेष्ठतर बनाकर दें; ताकि हम अधिक अच्छे ढंग से आपके द्वारा सौंपे गए दायित्वों-कर्त्तव्यों का पालन कर सकें।"**

यह प्रार्थना करते हुए माँ की गोद में इष्ट के अंग में समा जाने के भाव से शयन करें। नींद आने तक सतत यही भावना दुहराते रहें, यही भाव बनाए रखें। योगस्थ मनोभूमि के सहारे योग निद्रा में प्रवेश का सुख प्राप्त करें।

निश्चित ही इस पूरी पाँच दिवसीय दिनचर्या का विशिष्ट लाभ सभी परिजनों को प्राप्त होगा। अपनी अनुभूतियाँ- अनुदानों की चर्चा सर्वसामान्य के सामने करना उचित नहीं है। इसे अन्तिम दिन समापन गोष्ठी में अपने सङ्कल्पों के साथ लिख सकें, तो लिखकर दें। जीवन में मिला यह अमूल्य अवसर बार-बार आए, इसी भाव के साथ तीर्थ क्षेत्र छोड़ें एवं प्रतिदिन प्रात: युगतीर्थ आने - यहाँ रहकर साधना करने व अनुदानों को लेकर जाने के क्षणों का मानसिक ध्यान करते रहें। इससे यह ऊर्जा निरन्तर मिलती रहेगी।

आत्मचिन्तन के बिन्दु

१. पू0 गुरुसत्ता से हमने दीक्षा क्यों ली ? (जिस दिन आदर्शमय जीवन जीने की, कर्त्तव्यों की ओर अग्रसर होने की शपथ खाई जाती है, उस शपथ का नाम दीक्षा संस्कार है।)

२. क्या हम उन दीक्षा के नियमों का पालन कर रहे हैं ?

३. हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है ?

४. क्या हम अपने आपको पू0 गुरुसत्ता के इच्छानुरूप एक साँचा-मॉडल बना पाये ?

५. क्या हमारी वेशभूषा, आहार व अन्य उपयोगी साधन औसत भारतीय स्तर का है ?

६. क्या हम अपनी अब तक की आत्मप्रगति से सन्तुष्ट हैं ?

७. क्या हमारा चिन्तन, चरित्र और व्यवहार ऐसा बन गया है, जिसे देखकर लोग आकर्षित होते हैं और आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा ग्रहण करते हैं ?

८. क्या हम अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों का भली प्रकार पालन कर रहे हैं ?

९. क्या हम अपने २४ घण्टे के समय का पूरा सदुपयोग कर रहे हैं ? दिनचर्या का निर्धारण करें। जैसे

क. प्रातः उठने का समय। ख. दैनन्दिन क्रियाकलापों का समय।

ग. विद्यालय जाने का समय। घ. परिवार के लिए समय।

च. मनोरञ्जन काल। छ. शयन काल।

१०. क्या हम नियमित उपासना एवं सेवाकार्य हेतु पर्याप्त समय देते हैं ? (आप जितना समय संसार के लिए देते हैं उतना, ही भगवान् के लिए दीजिए। उतना न बन पड़े, तो कम से कम आधा तो होना ही चाहिए।)

स्फुट प्रकरण

उच्चस्तरीय साधना विधान के अन्तर्गत कुछ अतिरिक्त ध्यानात्मक आसन-प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध का उल्लेख किया जा रहा है, जिन्हें साधक आवश्यकतानुसार प्रयोग कर सकते हैं।

आसन

आसन समग्र शरीर का होता है। कमर सीधी, आँखें अधखुली अथवा अधबन्द-सी, शान्त चित्त, स्थिर काया, यह स्थिति ध्यान के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती है। दोनों हाथ गोदी में हों, शरीर सुखासन की स्थिति में होते हुए भी सुस्थिर, सुव्यवस्थित हो। आसनों के चित्र टाइटिल पृष्ठ क्र.-२ पर दिये गये हैं। आसन निम्नलिखित हैं।

१. पद्मासन- दोनों पैर विपरीत दिशा में दोनों जाँघों पर रखें। तलवा ऊपर की ओर रहे और एड़ी कूल्हे की हड्डी का स्पर्श करे। सिर, मेरुदण्ड सीधे रहें और कन्धे तनाव मुक्त।

लाभ-शारीरिक स्थिरता,मन शान्त। प्राण शक्ति का सुषुम्ना में प्रवाह, जठराग्नि तेज।

२. सिद्धासन- बाएँ पैर की एड़ी पर बैठते हुए तलवे को दायीं जाँघ के भीतर लें। बाँये पैर की एड़ी का दबाव गुदा एवं जनेन्द्रिय के बीच रहे। दाएँ पैर को मोड़कर टखने को बाएँ टखने के ठीक ऊपर या पास में रखें। एड़ियाँ एक दूसरे के ऊपर रखें। दाएँ पैर के तलवे को बायीं जाँघ एवं पिण्डली के बीच फँसायें। हाँथों को घुटनों पर रखें। इसका अभ्यास किसी भी पैर को ऊपर करके किया जा सकता है।

लाभ-प्राण ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन,ब्रह्मचर्य पालन में सहयोग। रक्त चाप सन्तुलित करता है।

३. सिद्धयोनि आसन- यह केवल महिलाओं के लिये है। बायीं एड़ी को योनि के भगोष्ठ के भीतर जमा कर रखें। तलवे को दायीं जाँघ व पिण्डली के

बीच फँसा लें। बायीं एड़ी के दबाव को महसूस करें। दायें पैर की एड़ी को बायीं एड़ी पर इस प्रकार रखें कि वह भग–शिश्न को दबाए। तलवे को बायीं जाँघ एवं पिण्डली के बीच फँसा दें। इसका अभ्यास किसी भी पैर को ऊपर करके किया जा सकता है।

लाभ–सिद्धासन के समान।

४. वज्रासन– घुटनों के बल जमीन पर बैठें। पैरों के अँगूठे को एक साथ और एड़ियों को अलग– अलग रखें। पञ्जों के भीतर भाग के ऊपर बैठें। एड़ियाँ कूल्हों का स्पर्श करें। हाथों को घुटनों पर रखें। हथेलियाँ नीचे की ओर रहें। अन्दर–बाहर, आती–जाती श्वास पर ध्यान केन्द्रित करें। चित्र टाइटिल पृष्ठ क्र.–४ पर दिया गया है।

लाभ–पाचन क्रिया तीव्र हो जाती है, फलस्वरूप अम्लता एवं पेप्टिक अल्सर में लाभ होता है। हर्निया, बवासीर, हाइड्रोसिल, मासिकस्राव की गड़बड़ी दूर करता है। साइटिका व मेरुदण्ड के निचले भाग की गड़बड़ी से ग्रस्त व्यक्तियों के लिये ध्यान के लिये सर्वोत्तम आसन है। सुषुम्ना में प्राण का सञ्चार करता है तथा काम ऊर्जा को मस्तिष्क में सम्प्रेषित करता है।

५. स्वस्तिकासन–यह सिद्धासन का सरलीकृत रूप है। अन्तर केवल इतना है कि एड़ी का दबाव गुदा एवं जननेन्द्रिय के बीच न होकर बगल में रहता है।

लाभ–पेशीय पीड़ा से परेशान लोगों के लिये बैठने हेतु एक स्वस्थ आसन है।

६. सुखासन–जिस प्रकार बैठने से शरीर को सुविधा हो, शान्ति में अड़चन न पड़े, वही सुखासन कहलाता है। बाएँ पैर को मोड़कर पञ्जे को दाएँ जाँघ के नीचे रखें। दाएँ पैर को मोड़कर पञ्जे को बाँयी जाँघ के नीचे रखें। हाथों को घुटनों पर रखें।

लाभ–बिना तनाव, कष्ट और पीड़ा के शारीरिक व मानसिक सन्तुलन प्रदान करता है। जो लोग ध्यान के कठिन आसनों में नहीं बैठ सकते, उनके लिए सरलतम एवं सर्वाधिक आरामदायक आसन है।

७. भद्रासन–वज्रासन में बैठें। घुटनों को जितना सम्भव हो दूर–दूर कर लें, किन्तु जोर न लगायें। पैरों की उँगलियों का सम्पर्क जमीन से बना रहे। अब पञ्जों को एक दूसरे से इतना अलग कर लें कि नितम्ब और मूलाधार इनके बीच जमीन पर टिक सके। हाथों को घुटनों पर रखें। हथेलियाँ नीचे की ओर रहें। नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि को एकाग्र करें।

लाभ–यह ध्यान के लिये एक उत्कृष्ट आसन है। इससे मूलाधार चक्र उत्तेजित होता है। वज्रासन से प्राप्त होने वाले सभी लाभ इससे भी प्राप्त होते हैं।

८. वीरासन–वज्रासन में बैठें। दाहिने घुटने को ऊपर उठायें और दाहिने पञ्जे को बाएँ घुटने के भीतरी भाग के पास जमीन पर रखें। दाहिनी कोहिनी को दाहिने घुटने पर और ठुड्डी को दाहिने हाथ की हथेली पर रखें। आँखों को बन्द कर विश्राम करें। बाएँ पञ्जे को दाहिने घुटने के बगल में रखकर इसकी पुनरावृत्ति करें। सजगता श्वास पर रखें।

लाभ–एकाग्रता में वृद्धि,शारीरिक एवं मानसिक विश्रान्ति प्रदान करता है। गुर्दे, यकृत,प्रजनन एवं आमाशय अंगों के लिये यह उत्तम आसन है।

९. ध्यान वीरासन–दाएँ पैर को बाएँ पैर के ऊपर इस प्रकार रखें कि दाएँ पैर की एड़ी बाएँ नितम्ब को और बाएँ पैर की एड़ी दाएँ नितम्ब को स्पर्श करे। दाएँ घुटने को बाएँ घुटने पर तथा हाथों को घुटने या पैर के दोनों पंजों पर जो भी सुविधाजनक हो, रख लें। इस क्रम को विपरीत अर्थात् दाएँ पैर के ऊपर बायाँ पैर रखकर भी कर सकते हैं।

लाभ–श्रोणीय और प्रजनन अंङ्गों की मालिश कर उन्हें पुष्ट बनाता है।

प्राणायाम

उच्चस्तरीय योग साधना में प्राणायाम साधना का अपना महत्त्व है। प्राणायाम दिखने में ही सामान्य लगता है, पर यदि उच्चस्तरीय विधान के आधार पर साधा जाए तो शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक प्रगति के लिए उससे महत्त्वपूर्ण लाभ उठाया जा सकता है।

१. कपालभाति प्राणायाम–: ध्यानात्मक आसन में बैठें। पेट को फैलाते हुए श्वास लें। पेट की पेशियों को बलपूर्वक संकुचित करते हुए श्वास छोड़ें, किन्तु अधिक जोर न लगायें। अगली श्वास उदर की पेशियों को बिना फैलाते हुए सहज ढंग से लें। पूरक सहज होना चाहिए,उसमें किसी प्रकार का प्रयास नहीं लगना चाहिए। प्रारम्भ मे 10 बार रेचक करें। गिनती मानसिक रूप से करें। 10 बार रेचक करने के बाद गहरी श्वास लेकर गहरी श्वास छोड़ें। यह एक चक्र पूरा हुआ। ३ से ५ चक्र अभ्यास करें। उच्च अभ्यासी १०चक्र या उससे अधिक अभ्यास कर सकते हैं। जैसे–जैसे उदर की पेशियाँ मजबूत होती जायें, श्वास–प्रश्वास की संख्या को 10 से बढ़ाकर 20 तक ले जा सकते हैं।

नोट:– श्वास लेते और निकालते समय पसलियों के बीच की माँसपेशियाँ यथासम्भव जैसी की तैसी स्थिति में रखी जाती हैं और केवल पेट की माँसपेशियों को उठाया और गिराया जाता है। पूरक और रेचक में लगने वाले समय में भी बड़ा अन्तर है। उदाहरणार्थ अगर एक रेचक और एक पूरक में मिलकर एक सेकण्ड लगता हो, तो रेचक में चौथाई सेकण्ड और पूरक में पौन सेकण्ड समझना चाहिए। इसका आशय यह है कि कपालभाति में रेचक की ही मुख्यता है।

लाभ–इड़ा और पिङ्गला नाड़ी का शोधन। मन से इन्द्रिय विक्षेपों को दूर करता है। निद्रा, आलस्य को दूर करता है। मन को ध्यान के लिये तैयार करता है। दमा,वातस्फीति,ब्रोन्काइटिस और यक्ष्मा से पीड़ित व्यक्तियों के लिये उत्तम। तन्त्रिका तन्त्र में सन्तुलन लाता एवं पाचन तन्त्र को पुष्ट करता है। आध्यात्मिक साधकों के लिए यह अभ्यास विचारों एवं सूक्ष्म दृश्यों को रोकता है।

सावधानियाँ– हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, चक्कर आना, मिर्गी, हर्नियाँ या गैस्ट्रिक अल्सर से पीड़ित व्यक्ति यह प्राणायाम न करें।

२. भस्त्रिका प्राणायाम–: ध्यानात्मक आसन में बैठें। दाहिने नासिका छिद्र को बन्द कर बाएँ से दस बार जल्दी–जल्दी श्वास लें और छोड़ें। श्वास के

तप ही है व्यक्ति निर्माण की धुरी

श्रुति कहती है- "तप से प्रजापति ने इस सृष्टि को सृजा। सूर्य तपा और संसार को तपाने में समर्थ हुआ। तप के बल से शेषनाग पृथ्वी का वजन उठाते हैं। शक्ति और वैभव का उदय तप से ही होता है। तपाने पर ही धातुओं से उपकरण ढलते हैं। सोने के आभूषण बनते हैं। बहुमूल्य रस-भस्में तपाये जाने पर ही अमृतोपम गुण दिखाती हैं। तपस्वी बलवान् बनता है, विद्वान् और मेधावी बनता है। ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी बनना हो, तो तपश्चर्या का ही अवलम्बन लेना पड़ता है। विलासी, आलसी और कायर मरते हैं, प्रतिभा गवाँ बैठते हैं। प्रामाणिकता न रहने पर उन्हें लक्ष्मी छोड़कर चली जाती है। वे पराधीन की भाँति जीते और दीन-दुर्बल की तरह उपहासास्पद बनते हैं। अस्तु, तपस्वी होना चाहिए। तप में प्रमाद नहीं करना चाहिए। तपस्वी को टोको मत। तपस्वी को डराओ मत।"

परम पूज्य गुरुदेव का यह मिशन-संगठन तप की पूँजी के बल पर ही खड़ा हुआ है। इसकी शुरुआत साधना से हुई एवं उसका साक्षी है सन् १९२६ से निरन्तर प्रज्वलित अखण्ड दीपक। उसी की प्रत्यक्ष साक्षी में गायत्री परिवार के सभी महत्त्वपूर्ण निर्धारण होते चले गए। "युग निर्माण आन्दोलन" जिस एक धुरी- "व्यक्ति निर्माण" पर टिका है, वह भी प्रकारान्तर से साधना द्वारा युग की माँग के अनुरूप श्रेष्ठ मानव का निर्माण करना ही है। मानव में देवत्व के उदय से उसको जीवन लक्ष्य का बोध कराना, अपने आपको तपाना-साधना द्वारा अपना परिष्कार करना तथा फिर परिवार निर्माण, समाज निर्माण द्वारा धरती पर स्वर्ग के अवतरण जैसी परिस्थितियाँ खड़ी करना- युग परिवर्तन को साकार कर दिखाना ही हमारी आराध्य सत्ता का लक्ष्य रहा है।

साथ पेट लयपूर्ण ढंग से फैलना और सिकुड़ना चाहिए। वायु भरने और छोड़ने की क्रिया पेट द्वारा ही होनी चाहिए। वक्ष को न फैलायें और न ही कन्धों को उठायें। नासिका में सूँ-सूँ की आवाज होनी चाहिए, किन्तु गले और छाती से कोई आवाज नहीं आनी चाहिए। 10 बार पूरक और रेचक करने के बाद, बाएँ नासिका छिद्र से गहरी श्वास लें। अन्तःकुम्भक करें। बाएँ नासिका छिद्र से ही रेचक करें। इसी प्रकार सारी क्रियाएँ दाहिनी नासिका से 10 बार एवं दोनों नासिका से 10 बार करें। ऊपर बतायी गई विधि के अनुसार पहले बाएँ फिर दाएँ और अन्त में दोनों नासिका छिद्रों से श्वसन करने से अभ्यास का एक चक्र पूरा होता है। अभ्यास के दौरान सजगता नाभि पर बनायें रखें।

सावधानियाँ-नये अभ्यासियों को प्रत्येक चक्र के बाद थोड़ा विश्राम कर लेना चाहिए। उच्च रक्तचाप, हृदयरोग, हर्निया, गैस्ट्रिक, अल्सर, दौरा, मिर्गी या चक्कर आने की बीमारी वाले लोगों को भस्त्रिका का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ-शरीर के विषैले पदार्थ को जलाता है। वात,पित्त,कफ से सम्बन्धित रोगों को दूर करता है। पाचन संस्थान को पुष्ट करता है। दमा एवं फेफड़े के रोग में उत्तम। गले की सूजन एवं कफ के जमाव को दूर करता है। मानसिक शान्ति और एकाग्रता में उपयोगी।

३. शीतली प्राणायाम-: ध्यान के सुविधाजनक आसन में बैठें। जिह्वा के दोनों किनारों को इस प्रकार मोड़ें की उसकी आकृति एक नलिका सी हो जाए। इस नली के द्वारा सी-सी की आवाज करते हुए श्वास अन्दर खींचें। पूरक के अन्त में जिह्वा अन्दर कर लें, मुँह को बन्द करें और नासिका के द्वारा रेचक करें। जिह्वा के ऊपरी भाग में शीतलता का अनुभव करें।

लाभ–शरीर एवं मन शीतल। कामेच्छा और तापमान–नियमन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण मस्तिष्कीय केन्द्रों को प्रभावित करता है। मानसिक और भावनात्मक उत्तेजनाओं को शान्ति प्रदान करता है। भूख–प्यास पर नियन्त्रण कर तृप्ति प्रदान करता है। रक्तचाप और उदर की अम्लता को कम करता है।

सावधानियाँ–इसका अभ्यास प्रदूषित वायुमण्डल और ठण्डे मौसम में नहीं करना चाहिए। निम्न रक्तचाप या श्वसन सम्बन्धी रोगों जैसे–दमा, ब्रोंकाइटिस और बहुत अधिक कफ से पीड़ित व्यक्तियों को यह प्राणायाम नहीं करना चाहिए।

४. शीतकारी प्राणायाम–: अपने जबड़े व दाँत सहजता से बन्द रखें। दोनों होठों को थोड़ा सा खोल लें, पूरक करें। अन्य क्रियाएँ तथा लाभ एवं सावधानियाँ शीतली प्राणायाम जैसी ही हैं।

तीन बन्ध

1– मूलबन्ध–: मूलाधार प्रदेश (गुदा व जननेन्द्रिय के बीच का क्षेत्र) को ऊपर की ओर खींचे रखना मूलबन्ध कहलाता है। गुदा को संकुचित करने से अपान स्थिर रहता है। वीर्य का अध: प्रभाव रुककर स्थिरता आती है। प्राण की अधोगति रुककर ऊर्ध्व गति होती है। मूलाधार स्थित कुण्डलिनी में मूलबन्ध से चैतन्यता उत्पन्न होती है। आँतें बलवान् होती हैं। मलावरोध नहीं होता, रक्त सञ्चार की गति ठीक रहती है। अपान और कूर्म दोनों पर ही मूलबन्ध का प्रभाव पड़ता है। वे जिन तन्तुओं में फैले रहते हैं, उनका संकुचन होने से यह बिखराव एक केन्द्र में एकत्रित होने लगता है।

२– उड्डियान बन्ध–: पेट को ऊपर की ओर जितना खींचा जा सके, उतना खींच कर उसे पीछे की ओर पीठ में चिपका देने का प्रयत्न इस बन्ध में किया जाता है। इससे मृत्यु पर विजय होती है। जीवनी शक्ति को बढ़ाकर दीर्घायु तक जीवन स्थिर रखने का लाभ उड्डियान से मिलता है। आँतों की निष्क्रियता दूर होती है। आंत्रपुच्छ, जलोदर, पाण्डु, यकृत वृद्धि, बहुमूत्र सरीखे उदर

तथा मूत्राशय के रोगों में इस बन्ध से बड़ा लाभ होता है। नाभि स्थित समान और कृकल प्राणों में स्थिरता तथा वात, पित्त, कफ की शुद्धि होती है। सुषुम्ना नाड़ी का द्वार खुलता है और स्वाधिष्ठान चक्र में चेतना आने से वह स्वल्प श्रम से ही जाग्रत् होने योग्य हो जाता है।

सावधानियाँ– आँतों की सूजन, अमाशय या आँतों के फोड़े, हर्निया, आँख के अन्दर की बीमारी ग्लूकोमा, हृदय रोगी, उच्च रक्तचाप रोगी एवं गर्भवती महिलाएँ न करें।

३– जालन्धर बन्ध–: मस्तक को झुकाकर ठोड़ी को कण्ठ–कूप (कण्ठ में पसलियों के जोड़ पर जो गड्ढा है, उसे कण्ठ –कूप कहते हैं) अथवा छाती से लगाने को जालन्धर बन्ध कहते हैं। जालन्धर बन्ध से श्वास–प्रश्वास क्रिया पर अधिकार होता है। ज्ञानतन्तु बलवान् होते हैं। हठयोग में बताया गया है कि इस बन्ध का सोलह स्थान की नाड़ियों पर प्रभाव पड़ता है। १. पादाङ्गुष्ठ, २. गुल्फ, ३. घुटने, ४. जंघा, ५. सीवनी, ६. लिंग, ७. नाभि, ८. हृदय, ९. ग्रीवा, १०. कण्ठ, ११. लम्बिका, १२. नासिका, १३. भ्रू, १४. कपाल, १५. मूर्धा, १६. ब्रह्मरन्ध्र यह सोलह स्थान जालन्धर बन्ध के प्रभाव क्षेत्र हैं। विशुद्धि चक्र के जागरण में जालन्धर बन्ध से बड़ी सहायता मिलती है।

सावधानियाँ– सर्वाइकल स्पाण्डिलाइटिस, उच्च रक्तचाप,हृदय रोगी न करें।

अश्विनी मुद्रा

यह मूल बन्ध की प्रारम्भिक क्रिया है। गुदा को संकुचित कीजिए, पुनः उसको मुक्त कीजिए। गुदा को सिकोड़ने एवं छोड़ने की क्रिया ही अश्विनी मुद्रा कहलाती है। इससे गुदा की पेशियाँ मजबूत होती हैं। मलाशय सम्बन्धी दोषों जैसे– कब्ज, बवासीर और गर्भाशय या मलाशय भ्रंश को दूर करती है। प्राण शक्ति का क्षरण रोककर आध्यात्मिक प्रगति हेतु ऊपर की ओर दिशान्तरित कर देती है।

प्राणायाम सम्बन्धी सामान्य जानकारी

१. प्राणायाम करने का स्थान स्वच्छ, हवादार शान्तिमय और पवित्र हो। प्राकृतिक स्थान, नदी-सरोवर का तट, पहाड़ आदि उत्तम हैं। फिर भी स्वच्छ हवादार कमरे या छत पर भी काम चलाया जा सकता है। दुर्गन्ध, सीलन, धूलयुक्त स्थान पर प्राणायाम करने से हानि भी हो सकती है।

२. प्राणायाम के लिए प्रातः-सायं का समय उपयुक्त है। भोजन करने के ६ घण्टे बाद ही प्राणायाम किया जाय। खाली पेट प्राणायाम करना चाहिए, पर बहुत ज्यादा भूख लग रही हो, तब प्राणायाम नहीं करना चाहिए।

३. ध्यानात्मक आसन सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन आदि की स्थिति में बैठकर प्राणायाम करने चाहिए। खासकर इस बात का ध्यान रखा जाय कि मेरुदण्ड, गर्दन, कमर, छाती सीधी रहे, तो ही अनुकूल लाभ मिल सकेंगे।

४. प्राणायाम से पर्याप्त लाभ उठाने के लिए आहार-विहार का सन्तुलन, व्यवस्थित जीवनक्रम होना आवश्यक है। जीवन की मर्यादाओं का व्यतिरेक करने पर किसी भी अभ्यास से लाभ नहीं मिलता।

५. प्राणायाम का अभ्यास करने वाले का भोजन हलका, सात्त्विक, स्निग्ध, पेय आदि हैं। इस तरह रोटी, साग, दूध, घी, दलिया, चावल, खिचड़ी, फल आदि उत्तम हैं।

६. शक्ति वर्धन एवं भारी काम करने वालों का भोजन विशेष रूप से पौष्टिक, स्निग्ध और सुपाच्य होना चाहिए।

७. किसी तीव्र रोग ज्वरादि की स्थिति में प्राणायाम का अभ्यास करना वर्जित है।

८. सर्दी के मौसम में शीतली, चन्द्रभेदी, शीतकारी आदि प्राणायामों

का अभ्यास नहीं करना चाहिए; किन्तु पित्त प्रधान प्रकृति वाले इन्हें सर्दी में भी कर सकते हैं।

९. गर्मी के मौसम में भस्त्रिका, कपालभाति, सूर्यभेदन आदि प्राणायाम नहीं करने चाहिए; पर कफप्रधान प्रकृति वाले इन्हें हिमालय आदि ठण्डे स्थानों पर भी कर सकते हैं।

१०. शीतली, सीत्कारी प्राणायाम वात प्रधान प्रकृति के लोग न करें।

११. मन की एकाग्रता के लिए तथा चित्त की चञ्चलता, विक्षिप्तावस्था को दूर करने के लिए भ्रामरी, उज्जायी, शीतली, शीतकारी आदि प्राणायाम करना हितकारी रहता है।

१२. ब्रह्मचर्य के पालन का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

१३. पेट को हलका और मलरहित रखने का प्रयत्न करना चाहिए इससे प्राणायाम के अभ्यास में सुगमता और सिद्धि मिलती है।

१४. प्राणायाम के अभ्यास के बाद १५-२० मिनट या जितना बने विश्राम अवश्य ले लेना चाहिए।

१५. तीनों बन्धों को आवश्यकतानुसार अवश्य लगाना चाहिए।

१६. प्राणायाम करते समय छाती को फुलाना चाहिए इससे फेफड़े और अवयवों को विकास के लिए काफी सहायता मिल जाती है।

१७. जो व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से प्राणायाम करते हैं उनको पूरक, कुम्भक आदि का समय क्रमशः बढ़ाते चलना चाहिए; किन्तु इतना अधिक नहीं, कि घुटन महसूस हो।

१८. जो व्यक्ति केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से प्राणायाम करते हैं, उनको पूरक, कुम्भक आदि का समय कम रखने का ही प्रयत्न करना चाहिए।

१९. प्राणायाम थोड़े से प्रारम्भ कर क्रमशः मात्रा बढ़ायें। सामर्थ्य अनुसार ही प्राणायाम करें। कुशल मार्गदर्शन में प्राणायाम करने से शीघ्र सफलता मिलती है।

मुद्रा विज्ञान

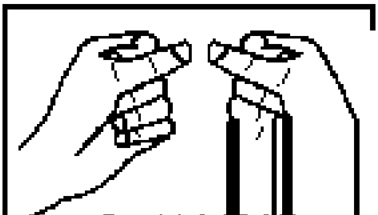
नास्ति मुद्रासमं किञ्चित् सिद्धिदं क्षितिमण्डले

अंगुलियों में पञ्चतत्त्व-

अंगुष्ठ-अग्नि, तर्जनी-वायु, मध्यमा-आकाश, अनामिका-पृथ्वी, कनिष्ठा- जल।

हमारा शरीर पाँच तत्त्वों से मिलकर बना है। इन पञ्चतत्त्वों में असन्तुलन और घटा-बढ़ी से रोगों की उत्पत्ति होती है। अंगुलियों की सहायता से विभिन्न मुद्राओं द्वारा इन पञ्चतत्त्वों को सन्तुलित कर स्वास्थ्य रक्षा एवं रोग निवारण किया जा सकता है। कुछ मुद्रायें तत्काल असर करती हैं। जैसे- शून्य मुद्रा, लिंग मुद्रा, आदित्य मुद्रा एवं अपान वायु मुद्रा। कुछ मुद्राएँ लम्बे समय के अभ्यास के बाद अपना स्थायी प्रभाव प्रकट करती हैं। इन्हें चलते-फिरते, उठते-बैठते ४५ मिनट तक करने से पूर्ण लाभ होता है। ज्ञान, प्राण, पृथ्वी, अपान, ध्यान, सहज शंख एवं शंख मुद्रा की कोई समय सीमा नहीं है। अधिक करने से अधिक लाभ होगा। मुद्राएँ दोनों हाथों से करनी चाहिए। एक हाथ से मुद्रा करने पर भी लाभ होता है, जैसे- ज्ञान मुद्रा। बाएँ हाथ से जो मुद्रा की जाती है, उसका शरीर के दायीं ओर के अंगों पर प्रभाव पड़ता है और दाएँ हाथ से जो मुद्रा की जाती है उससे बायीं तरफ का शरीर प्रभावित होता है। मुद्रा में अंगुलियों का स्पर्श करते समय दबाव हलका और सहज होना चाहिए। शेष अंगुलियाँ तान कर रखने के बजाय सहज भाव से सीधे रखें।

१. पुस्तक मुद्रा- मुट्ठी बाँध लें। अंगूठा तर्जनी मुड़े भाग पर रहे।

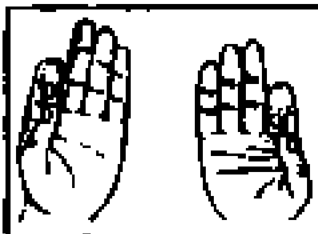


१. पुस्तक मुद्रा

लाभ- मस्तिष्क के सूक्ष्मकोश क्रियाशील होने से एकाग्रता की वृद्धि। कम समय में ज्यादा विद्या ग्रहण। कोई भी पुस्तक (धार्मिक या कठिन हो) जल्दी समझ में आ जाती है।

२. ज्ञान मुद्रा-अंगुष्ठ,तर्जनी के अग्रभाग को मिलायें शेष अंगुलियाँ सीधी।

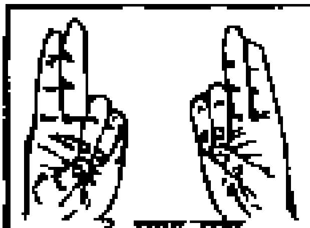
लाभ- एकाग्रता, नकारात्मक विचार कम। सिर दर्द, अनिद्रा, क्रोध तथा समस्त मस्तिष्क रोग-पागलपन, उन्माद, विक्षिप्तता, चिड़चिड़ापन, अस्थिरतापन, अनिश्चितता, आलस्य, घबराहट, अनमनापन या डिप्रेशन, व्याकुलता एवं भय का नाश करती है। स्मरण शक्ति तेज, दिव्य दृष्टि की प्राप्ति। अच्छे परिणाम हेतु बाद में प्राण मुद्रा करें।



२. ज्ञान मुद्रा-

३. प्राण मुद्रा- कनिष्ठ, अनामिका तथा अंगुष्ठ के अग्रभाग को मिलायें।

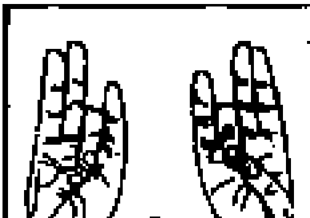
लाभ- प्राण की सुप्त शक्ति का जागरण, शरीर में स्फूर्ति, आरोग्य और ऊर्जा का विकास, नेत्र ज्योतिवर्धक, रोग प्रतिरोधक शक्ति का विकास, विटामिन की पूर्ति, उपवास काल में भूख-प्यास की कमी एवं थकान दूर करती है।



३. प्राण मुद्रा-

४. पृथ्वी मुद्रा- अनामिका, अंगुष्ठ के अग्रभाग को मिलायें।

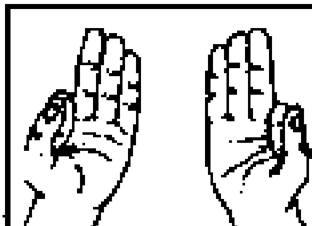
लाभ- शारीरिक दुर्बलता, पाचन शक्ति ठीक। जीवनी शक्ति व सात्विक गुणों का विकास। विटामिन की पूर्ति। शरीर में कान्ति एवं तेजस्विता की वृद्धि। वजन बढ़ाती और आध्यात्मिक प्रगति में सहयोगी।



४. पृथ्वी मुद्रा

५. वायु मुद्रा-तर्जनी को अंगुष्ठ के मूल में लगाकर अंगूठे को हलका सा दबायें।

लाभ- पुराने वातरोग, पोलियो, मुँह का टेढ़ा पड़ जाना आदि में लाभदायक। स्वस्थ होने तक ही करें। साथ में प्राण मुद्रा अधिक हितकर।



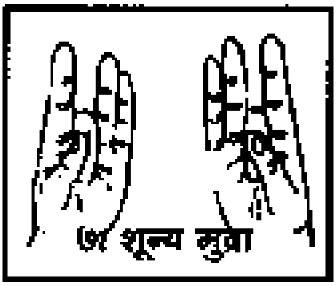
५. वायु मुद्रा-

६. **अपान मुद्रा-** अनामिका, मध्यमा एवं अंगुष्ठ के अग्रभाग को मिलायें।


६. अपान मुद्रा

लाभ- शरीर के विजातीय तत्त्व बाहर। कब्ज, बवासीर, मधुमेह, गुर्दा दोष दूर। पसीना लाती है। निम्न रक्तचाप, नाभि हटना तथा गर्भाशय दोष ठीक करती है। शरीर को योग की उच्च स्थिति में पहुँचने लायक सूक्ष्माति-सूक्ष्म स्वच्छ स्थिति की प्राप्ति। साथ में प्राण मुद्रा करने पर मुख, नाक, आँख, कान के विकार भी दूर होते हैं।

७. **शून्य मुद्रा-** मध्यमा अंगुली को अंगुष्ठ के मूल में लगाकर अंगुष्ठ से हलका दबाकर रखें।


७. शून्य मुद्रा

लाभ- कान का बहना एवं कान दर्द में आराम बहरेपन में दीर्घकाल तक न्यूनतम १ घण्टा करें। स्वस्थ होने तक ही करें। जन्म से बहरे गूंगे होने पर इसका प्रभाव नहीं होता। अस्थियों की कमजोरी व हृदय रोग दूर, मसूढ़ों की पकड़ मजबूत होती है। गले के रोग एवं थाइराइड रोग में लाभ।

८. **आकाश मुद्रा-** मध्यमा अंगुली को अंगूठे के अग्रभाग से लगायें।


८. आकाश मुद्रा

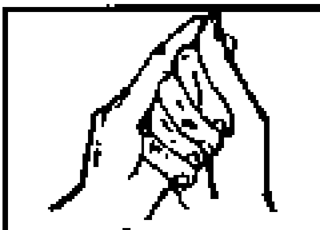
लाभ- कान के जो रोग शून्य मुद्रा से ठीक न हों, वे इस मुद्रा से ठीक होते हैं। हड्डियों की कमजोरी तथा हृदय रोग में लाभ।

९. **सहज शंख मुद्रा-** दोनों हाथ की अंगुलियों को आपस में फँसाकर हथेलियाँ दबायें तथा दोनों अंगूठे को बराबर में सटा कर रखें।

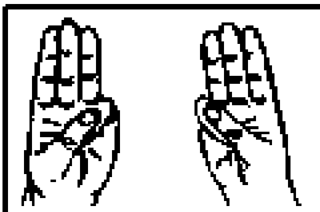
लाभ- हकलाना, तुतलाना बन्द एवं आवाज मधुर होती है। पाचन क्रिया ठीक होती है। आन्तरिक और बाहरी स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। ब्रह्मचर्य पालन में मदद मिलती है। वज्रासन में करने पर विशेष लाभ।


९. सहज शंख

१०. **शंख मुद्रा-**बाएँ हाथ के अंगूठे को दोनों हाथ की मुट्ठी में बंद करें।
लाभ- गले व थाइराइड ग्रन्थि पर प्रभाव। आवाज मधुर, पाचन क्रिया में सुधार। वाणी सम्बन्धी समस्त दोष,आँत व पेट के निचले भाग के विकार दूर होते हैं। यह मुद्रा पूजन में भी प्रयुक्त होती है।


१०. शंख मुद्रा-

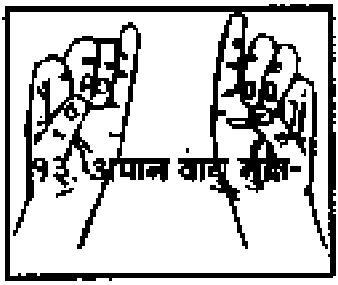
११. **जलोदर नाशक-** कनिष्ठा को अंगूठे के जड़ में लगाकर अंगूठे से दबायें।
लाभ- जल तत्त्व की अधिकता से होने वाले सभी रोग,सूजन, जलोदर आदि में विशेष लाभ होता है। रोग शान्त होने तक ही करें।


११. जलोदर नाशक

१२. **सूर्यमुद्रा-** अनामिका को अंगूठे के मूल में लगाकर अंगूठे से दबायें।
लाभ- मोटापा कम होने से शरीर सन्तुलित, पाचन क्रिया में मदद मिलती है। शक्ति का विकास, आलस्य दूर, कोलेस्ट्राल में कमी, तनाव में कमी फलस्वरूप मधुमेह, यकृत दोष में लाभ होता है। पद्मासन में बैठकर करना अच्छा रहता है।

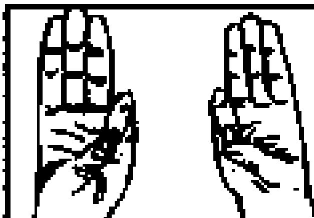

१२. सूर्यमुद्रा

१३. **अपान वायु मुद्रा-** तर्जनी को अंगुष्ठ मूल में लगाकर अंगूठे से हलका सा दबायें तथा अनामिका,मध्यमा एवं अंगुष्ठ के अग्रभाग को मिलायें।
लाभ- इससे हृदय एवं वात रोग दूर होते हैं। शरीर में आरोग्यता का विकास, दिल का दौरा पड़ते ही यह मुद्रा करने पर आराम। पेट-गैस का निष्कासन। सिर दर्द, पेट दर्द,


१३. अपान वायु मुद्रा-

कमर दर्द, साइटिका, गठिया, दमा, उच्च रक्तचाप, एसीडिटी में लाभ। शरीर का तापमान सन्तुलित। दमा के रोगी सीढ़ियों पर चढ़ने से पाँच-सात मिनट पहले कर लें।

१४. वरुण मुद्रा- कनिष्ठ अंगुली को अंगूठे से लगायें।



१४. वरुण मुद्रा

लाभ- रुखापन नष्ट, चमड़ी चमकीली व मुलायम, चर्मरोग, रक्त विकार, मुहाँसे एवं जल की कमी वाले रोग दूर होते हैं। दस्त, में लाभ। शरीर में खिंचाव का दर्द ठीक होता है।

१५. आदित्य मुद्रा- अंगुष्ठ को अनामिका के जड़ में लगायें। हलका सा दबायें। शेष अंगुलियाँ सीधी रखें।



१५. आदित्य मुद्रा

लाभ- छींक, उबासी में लाभ होता है।

१६. लिंग मुद्रा- दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में फँसा कर बायें हाथ का अंगूठा खड़ा रखें। दाहिने हाथ के अंगूठे से बायें हाथ के अंगूठे को लपेट लें।



१६. लिंग मुद्रा

लाभ- गर्मी बढ़ाती है। सर्दी, जुकाम, दमा, खाँसी, साइनस, लकवा, निम्न रक्तचाप में लाभ। नाक बहना बन्द। बन्द नाक खुल जाती है।

१७. ध्यान मुद्रा- बायें हाथ की हथेली पर दायें हाथ की हथेली रखें। कमर सीधी, आँखें बन्द रखें।



१७. ध्यान मुद्रा

लाभ- ओज एवं एकाग्रता में वृद्धि करती है। ध्यान की उच्चतर स्थिति तक पहुँचने में सहायक। ज्ञान मुद्रा एवं ध्यान मुद्रा दोनों एक साथ करने पर दोनों के सम्मिलित लाभ मिल जाते हैं।

साधना है आन्दोलन के मूल में

गायत्री साधना को परम पूज्य गुरुदेव ने अपने इस विराट् आन्दोलन के प्रचारात्मक पक्ष की धुरी बनाया। १९३७ से प्रकाशित ''अखण्ड ज्योति'' उसकी निमित्त बनी। वे जानते थे कि शीघ्र आजाद होने जा रहे भारतवर्ष को जिन देवमानवों की तलाश है–परिष्कृत प्रतिभावानों की जरूरत है, वे इसी साधना की धुरी पर चलकर तैयार हो पायेंगे। यदि हम १९४० में प्रकाशित ''मैं क्या हूँ'' से लेकर अब तक की उनकी ही प्रेरणा से प्रकाशित किसी भी रचना को देखें; तो प्रत्येक में जीवन साधना, प्रतिभा परिष्कार, युग धर्म का परिपालन, युग का प्रत्त्यावर्तन एवं सामान्य–अतिसामान्य व्यक्ति की भी उसमें भूमिका का उल्लेख देखते हैं।

यह मिशन जन–जन का है– हर उस परिजन का है, जिसके मन में अन्त: के परिष्कार की उमंग है, लगन है एवं नवयुग सृजन के प्रति वह सङ्कल्पित है, इस धरती पर नया सवेरा, नया उजाला वह लाना चाहता है। यही उद्देश्य लेकर हमारी गुरुसत्ता ने गायत्री तपोभूमि मथुरा एवं शान्तिकुञ्ज हरिद्वार में सतत चलने वाले साधना सत्रों की शृंखला चलायी। भावनाशील, विभूतिवान् उसमें आएँ–अपनी प्रतिभा का निखार करें– तपश्चर्या के न्यूनतम व्रतों को जीवन में धारण कर वे एक आदर्श परिजन, सद्गृहस्थ व समाजसेवी बनकर जियें, यही उनका लक्ष्य रहा। उज्ज्वल भविष्य इसके बिना सम्भव भी नहीं था।

समाज में प्रतिभावानों की कमी नहीं है। प्रतिभाएँ ढेर सारी हैं; पर वे सृजन में नहीं लगी हैं। साधना जीवन में आए, तो उसका नियोजन हो। परम पूज्य गुरुदेव के द्वारा आरम्भ किए गए विचार क्रान्ति अभियान का एक ही उद्देश्य रहा–भावनाशीलों में समुचित प्रतिभा जगाई जाये अथवा प्रतिभाशालियों में समुचित भावना जगाई जाये। यदि यह क्रम ठीक से निभ गया, तो फिर गति रुकेगी नहीं एवं क्रमश: वे साधक– प्रतिभाशाली आते चले जायेंगे, जिन्हें नवयुग की आधारशिला रखनी है।

रोगानुसार मुद्राएँ

आलस्य- पृथ्वी, प्राणमुद्रा
उ.र.चाप- अपानवायु, प्राणमुद्रा
उत्तेजना- ज्ञान, ध्यानमुद्रा
एलर्जी- लिंग, शंखमुद्रा
एसीडिटी- अपानवायु, अपानमुद्रा
कफ- लिंग, सूर्यमुद्रा
कब्ज- अपानमुद्रा
कमरदर्द- अपानवायु
खाँसी- लिंग, सूर्यमुद्रा
खुजली- वरुणमुद्रा
गर्दन दर्द- वायुमुद्रा
गैस्ट्रिक /पेटदर्द-अपानवायुमुद्रा
घुटना दर्द-अपानवायुमुद्रा
चिन्ता- ज्ञान, ध्यानमुद्रा
चिड़चिड़ापन-ज्ञान, ध्यानमुद्रा
छींक,उबासी-आदित्यमुद्रा
जलन- वरुण, अपानमुद्रा
जड़ता- प्राणमुद्रा
जबड़ा जकड़ना- आकाशमुद्रा
जुकाम- लिंग, सूर्यमुद्रा
टॉसिल- शंखमुद्रा
टी.बी.- लिंग, सूर्यमुद्रा
डायबिटीज-प्राण+अपानमुद्रा
थकान- प्राण, पृथ्वीमुद्रा
थाइराइड- सूर्य,शंख,सहज शंखमुद्रा
दमा-अपान वायु, सूर्य, लिंगमुद्रा
दस्त- वरुण,वायु,अपानवायुमुद्रा
दाँतदर्द- आकाश, अपानमुद्रा
दुर्बलता- पृथ्वीमुद्रा

निमोनिया-सूर्य, लिंगमुद्रा
नि.र.चाप- प्राण,लिंग,अपान,आकाश
निराशा- ज्ञान, प्राणमुद्रा
प्यास बुझाना-वरुण, प्राणमुद्रा
प्लूरसी-(फेफड़े में पानी) सूर्य, लिंग
पेशाब बंद होना- अपानवायुमुद्रा
पाचन-पृथ्वी, सूर्य, लिंग,सहजशंख
पैर दर्द- प्राणमुद्रा
बवासीर- सहज शंखमुद्रा
ब्रह्मचर्य- सहज शंखमुद्रा
बुखार-अपानवायु, वरुण, लिंगमुद्रा
बेचैनी-ज्ञान, अपानवायु, प्राणमुद्रा
भय- ज्ञानमुद्रा
भूख- प्राणमुद्रा
मासिकधर्म-अपान, शंखमुद्रा
मूर्छा- वरुणमुद्रा
याददाश्त- ज्ञानमुद्रा, पुस्तक मुद्रा
रक्तदोष- वरुण, प्राण, अपानमुद्रा
लकवा- वायु, प्राणमुद्रा
लीवर-सूर्य, शंख, सहजशंखमुद्रा
वजन बढ़ाना-पृथ्वीमुद्रा
वजन घटाना-सूर्यमुद्रा
शियाटिका-अपानवायु, प्राणमुद्रा
सायनस- सूर्य, लिंगमुद्रा
सिरदर्द- अपानवायुमुद्रा
सूजन- जलोदर नाशकमुद्रा
सोरायसिस-वरुण, अपानमुद्रा
हकलाना- शंखमुद्रा
हिचकी- अपानवायुमुद्रा

अनिद्रा- शवासन, भ्रामरी, त्राटक।

अण्डकोष वृद्धि- प्रज्ञायोग, सर्वांगासन। वज्रासन में अधिक बैठें। भ्रामरी प्राणायाम। अश्विनी मुद्रा, मूलबन्ध। कब्जियत से बचें।

उच्चरक्त चाप- सिद्धासन। शीतली, भ्रामरी, उज्जायीप्राणायाम। मांसाहार, मसालेयुक्त भोजन न करें।

एकाग्रता- नाड़ीशोधन, भ्रामरी, भस्त्रिका प्राणायाम।

एसीडीटी- वज्रासन। नाड़ीशोधन, भ्रामरी, शीतकारी प्राणायाम। हरी साग सब्जी, मौसमी फल, पानी अधिक पियें।

कब्ज- ताड़ासन। नाड़ीशोधन, शीतकारी प्राणायाम। उड्डियान बन्ध। ताजे फल, शाक सब्जी, अधिक मात्रा में पानी पियें।

कमर दर्द- भुजंगासन, ताड़ासन। उज्जायी, भ्रामरी, नाड़ीशोधन प्राणायाम। शाकाहारी, अधिक मात्रा में पानी पियें।

किडनी- प्रज्ञायोग, भुजंगान, सर्वांगासन, पश्चिमोत्तानासन। भस्त्रिका, कपालभाति प्राणायाम। उड्डियान बन्ध। मांसाहार, नमक कम मात्रा में खायें। पानी अधिक पियें।

कैंसर- प्रज्ञायोग। भ्रामरी, नाड़ीशोधन प्राणायाम।

क्रोध- पश्चिमोत्तानासन। नाड़ीशोधन, भ्रामरी, शीतली, उज्जायी-प्राणायाम। मूलबन्ध। शिथिलीकरण, अन्तर्मौन, शाकाहारी।

चर्म रोग- प्रज्ञायोग, सर्वांगासन। सभी प्राणायाम। मांसाहार, तेल, मसालेदार, काफी, चाय, मिठाई आदि वर्जित।

चिंता- प्रज्ञायोग, भुजंगासन, सर्वांगासन। कपालभाति, नाड़ीशोधन, भ्रामरी, शीतली प्राणायाम। शाकाहारी।

छाती में दर्द- शवासन। नाड़ीशोधन, भ्रामरी, उज्जायी प्राणायाम। शिथिलीकरण। शाकाहारी भोजन अल्प मात्रा में लें।

डिप्रेशन- प्रज्ञायोग, भुजंगासन। भस्त्रिका, कपालभाति। शाकाहारी

थकावट- प्रज्ञायोग, ताड़ासन। नाड़ीशोधन, भ्रामरी, भस्त्रिका, प्राणायाम। उड्डियान, मूलबन्ध।

दमा- प्रज्ञायोग, सर्वांगासन, भुजंगासन। नाड़ीशोधन, भस्त्रिका, कपालभाति प्राणायाम। कफ बनाने वाले पदार्थ न लें।

दस्त- प्रज्ञायोग। भ्रामरी, शीतली प्राणायाम। शवासन।

नपुंसकता- प्रज्ञायोग, सर्वांगासन, भुजंगासन। नाड़ीशोधन, भस्त्रिका-प्राणायाम। मूलबन्ध, अश्विनी मुद्रा।

निम्न रक्तचाप- प्रज्ञायोग। भस्त्रिका, कपालभाति, नाड़ीशोधन। उड्डियान

पाचन- भस्त्रिका, कपालभाति, नाड़ीशोधन प्राणायाम। उड्डियानबन्ध। हरी साग-सब्जी, मौसमी फल, पानी अधिक पियें।

बवासीर- सर्वांगासन। नाड़ीशोधन, भ्रामरी प्राणायाम। अश्विनी मुद्रा, मूलबन्ध। हलका सुपाच्य शाकाहारी भोजन, मांसाहार, तेल-मसाले वर्जित, अधिक मात्रा में पानी पियें।

बहरापन- नाड़ीशोधन, भ्रामरी प्राणा.। पीछे झुकने वाले सभी आसन।

मधुमेह- प्रज्ञायोग, सर्वांगासन, भुजंगासन, पश्चिमोत्तानासन। नाड़ीशोधन, भस्त्रिका प्राणायाम। आहार चिकित्सक की सलाह से लें। प्रातः टहलें।

मासिक स्राव-प्रज्ञायोग, भुजंगासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन। नाड़ीशोधन प्राणायाम। अश्विनी मुद्रा, उड्डियान, मूलबन्ध। शाकाहारी, सलाद लें।

मोटापा- प्रज्ञायोग। भस्त्रिका, नाड़ीशोधन प्राणायाम। तेल-घी वर्जित, शाकाहारी। साप्ताहिक उपवास करें।

वातरोग- वज्रासन। नाड़ीशोधन, भ्रामरी प्राणायाम। शाकाहारी भोजन।

स्लिप डिस्क-पीछे झुकने वाले आसन धीमी गति से करें। भ्रामरी, शीतली, नाड़ीशोधन प्राणायाम।

सर्दी- प्रज्ञायोग, वज्रासन। भस्त्रिका, कपालभाति प्राणायाम। कफ कारक पदार्थ न लें। दूध से बने पदार्थ भी न खायें।

सिर दर्द- शवासन, ताड़ासन, वज्रासन। नाड़ीशोधन, भ्रामरी, शीतकारी प्राणायाम।

हकलाना- भ्रामरी, शीतली प्राणायाम।

राजयोग

राजमार्ग का अर्थ है आम-सड़क। वह रास्ता जिस पर होकर हर कोई चल सके। राजयोग का भी ऐसा ही तात्पर्य है। जिस योग की साधना हर कोई कर सके। सरलतापूर्वक प्रगति कर सके। राजयोग के आठ अंग हैं।

1. **यम** –सभी प्राणियों के साथ किये जाने वाले व्यावहारिक जीवन को यमों द्वारा सात्त्विक व दिव्य बनाना होता है। यम पाँच हैं।

सत्य– बात को ज्यों का त्यों कह देना सत्य नहीं है, वरन् जिसमें प्राणियों का अधिक हित होता हो, वही सत्य है।

अस्तेय– अस्तेय का वास्तविक तात्पर्य है, अपना वास्तविक हक खाना। विचार कीजिए- इस वस्तु पर मेरा धर्मपूर्वक हक है? इसमें किसी दूसरे का भाग तो नहीं, अधिक तो नहीं ले रहे हैं, कर्त्तव्य में कमी तो नहीं, जिनको चाहिए दिये बिना तो नहीं ले रहे हैं।

अहिंसा– अहिंसा का तात्पर्य है, द्वेष रहित होना, प्रेम की पूजा, मृत्यु से विचलित न होना।

ब्रह्मचर्य– ब्रह्मचर्य का अर्थ है- मन, वचन और काया से समस्त इन्द्रियों का संयम।

अपरिग्रह– अनावश्यक चीजों का संग्रह न करना अपरिग्रह है।

2. **नियम**– अपने शरीर, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण से सम्बन्ध रखने वाले व्यावहारिक विषयों को सात्त्विक, पवित्र व दिव्य बनाना। नियम पाँच हैं।

शौच– शरीर,वस्त्र, मकान एवं उपयोग में आ रही सामग्री को स्वच्छ पवित्र रखना। जल से शरीर की, सत्य से मन की शुद्धि होती है।

सन्तोष–भली-बुरी परिस्थितियों में प्रसन्न रहना सन्तोष का तात्पर्य है।

तप– सदुद्देश्य के लिए कष्ट सहना तप है।

स्वाध्याय–अपने आप अपने बारे में पढ़ना। स्वाध्याय के योग्य मनोभूमि तैयार करने के लिए सद्ग्रन्थों का अवलोकन बहुत ही आवश्यक है।

ईश्वर प्रणिधान– ईश्वर को धारण करना, मित्र की तरह सलाह लेना। अन्तरात्मा से सदैव योग्य, उचित एवं लाभदायक उत्तर मिलता है।

3. आसन– आसन का सर्वप्रथम उद्‌देश्य तो स्थिर होकर कुछ घण्टे बैठ सकने का अभ्यास है। दूसरा उद्‌देश्य शारीरिक अंगों और नस–नाड़ियों का ऐसा व्यायाम करना है, जिससे उनके दोष निकलकर कार्यक्षमता की वृद्धि हो सके।

4. प्राणायाम–यम–नियमों द्वारा अन्तः चेतना की सफाई के साथ–साथ, शरीर व मन को बलवान् बनाने के लिए आसन, प्राणायाम की क्रिया सम्पन्न की जाती है।

5. प्रत्याहार– प्रत्याहार का अर्थ है उगलना। अपने कुविचारों , कुसंस्कारों, दुःस्वभावों, दुर्गुणों को निकाल बाहर करना। महान् सम्पदा के स्वागतार्थ योग्य मनोभूमि का निर्माण। आँख आदि इन्द्रियाँ अपने–अपने विषयों की ओर भागती हैं, उनको वहाँ से रोकना (और इष्ट साधन में लगाना) प्रत्याहार है।

6. धारणा– धारणा का तात्पर्य उस प्रकार के विश्वास के धारण करने से है, जिनके द्वारा मनोवाँछित स्थिति प्राप्त होती है।

7. ध्यान– ध्यान का तात्पर्य है, चिन्तन को एक ही प्रवाह में बहने देना। उसे अस्त–व्यस्त उड़ानों में भटकने से रोकना। किसी एक ही लक्ष्य पर कुछ समय विचार करना। नियत विषय में अधिकाधिक मनोयोग के साथ जुट जाना, तन्मय हो जाना, सारी सुध–बुध भुलाकर उसी में निमग्न हो जाना, ध्यान है।

8. समाधि– जब किसी बात पर भली प्रकार निर्विकल्प रूप से चित्त जम जाता है, तब उस अवस्था को समाधि कहा जाता है। इस स्थिति में विकारी मन अपनी सारी चञ्चलता के साथ एक गाढ़ी निद्रा में चला जाता है।

गायत्री तपोभूमि मथुरा में पञ्चकोशी साधना सत्र, कल्प साधना सत्र, जीवन साधना सत्र तथा शान्तिकुञ्ज–हरिद्वार में प्राण–प्रत्यावर्तन सत्र, सञ्जीवनी साधना सत्र, चान्द्रायण साधना आदि सत्रों का क्रम चलता रहा। हीरक जयन्ती वर्ष में साधना आन्दोलन के अन्तर्गत '' अन्तःऊर्जा जागरण सत्र'' की एक शृंखला आश्विन नवरात्र के तुरन्त बाद २६/१०/२००१ से आरम्भ की गई है। इक्कीसवीं सदी में नवसृजन की जिम्मेदारी गायत्री परिवार पर आ पड़ी है। इसके लिये साधकों का बड़ी संख्या में उच्चस्तरीय निर्माण करना होगा– उनका नियोजन राष्ट्र के रचनात्मक क्रियाकलापों हेतु हो, इसके लिये उन्हें तैयार करना होगा। इसी निमित्त प्रस्तुत साधना सत्रों की शृंखला आरम्भ की गयी है।

आत्महित-लोकहित

कुछ परिजन जो क्षेत्र में युग चेतना के विस्तार में लगे हैं, कभी सोचने लगते हैं कि पूज्यवर के विचारों का विस्तार ज्ञानयज्ञ–विचार क्रान्ति भी तो एक साधना ही है। फिर इस और उस साधना में क्या अन्तर है ? कुछ जो अति विशिष्ट साधना आत्मकल्याण, मोक्ष, जीवनमुक्ति हेतु करने को तत्पर रहते हैं, इससे भिन्न विचार रखते हैं एवं अधिक से अधिक निज की साधना को गहरा बनाने का–अतिविशिष्ट करने का सोचते हैं। यहाँ हम गुरुसत्ता के ही विचारों के माध्यम से इस असमञ्जस को दूर करना चाहेंगे।

उनने सतत अपने विचारों द्वारा एक ही बात कही कि जब युग परिवर्तन जैसे महान् कार्य सम्पन्न होते हैं, अवतारी चेतना एक व्यापक परिवर्तन के लिये उतारू हो उठती है, तो लोककल्याण के लिये किये गये प्रयास स्वतः आत्मकल्याण भी करते चले जाते हैं। समष्टि की आराधना–सेवा साधना तब व्यक्ति की उपासना–साधना को भी बलवती बना देती है। परमार्थ ही सच्चा स्वार्थ बन जाता है। अपना हित स्वयं सधने लगता है। सेवा–साधना में यदि तनिक भी आत्मसंयम की–अपने आपको तपाने की

साधना जुड़ जाए, तो दोनों ही हित सधने लगते हैं- (1) अपना परिष्कार, आध्यात्मिक विकास-भावनात्मक उत्थान तथा (2) समाज की-विराट् ब्रह्म की लोक मंगल प्रधान सेवा।

अन्तःऊर्जा का जागरण ही इस सत्र का लक्ष्य

प्रस्तुत समय प्रज्ञावतार के प्रकटीकरण की वेला का है। इस समय ढेरों जाग्रत् आत्माएँ स्वयं को परमात्मा के सङ्कल्प के साथ जोड़कर गतिशील हो रही हैं। आवश्यकता है तो बस इतनी कि अपने निज के आत्मबल का संवर्धन किया जाय। अपने अन्दर छिपी ऊर्जा को जगाया जाय एवं उससे उपलब्ध शक्ति का सुनियोजन अवतारी चेतना के प्रयोजन को पूरा करने में हो, यही युगधर्म है। समय की माँग है।

अवतारी चेतना या सद्गुरु से सूक्ष्म-कारण सत्ता के साथ एकाकार होने का सबसे सही मार्ग है अपनी साधना की प्रखरता-गहराई। ''अन्तः ऊर्जा जागरण'' के मौन एकाकी तप साधना हेतु आयोजित पाँच दिवसीय सत्र इसी निमित्त सम्पादित किये जा रहे हैं। इन सत्रों की अवधि में साधकों को न केवल दिव्य अनुभूतियाँ होंगी, बल्कि कई ऐसे मार्गदर्शक सूत्र मिलेंगे जिनसे उज्ज्वल भविष्य का पथ प्रशस्त होगा। पाँच दिन की थोड़ी सी अवधि में कठोर तप न कर सारा समय प्रमाद में गवाँ देने से वह लाभ नहीं मिल सकेगा, जिस उद्देश्य को लेकर ये सत्र आयोजित किये जा रहे हैं। यह तो जीवन साधना की-जीवन शैली को नये सिरे से ढालने की एक झलक मात्र है। युग चेतना के अभ्युदय की हीरक जयन्ती वर्ष में आरम्भ इस सत्र शृंखला में जो भागीदारी कर लेगा- वह सङ्कल्पपूर्वक अपने जीवन की दिशाधारा को एक नया मोड़ दे देगा। वह साधक निश्चित ही आत्मसाक्षात्कार-ऋषि चेतना के अनुदान का अधिकारी ही नहीं बनेगा, अगले दिनों नवनिर्माण की प्रक्रिया में उसकी एक सुनिश्चित भूमिका भी होगी।

अन्तःऊर्जा जागरण सत्रों की व्यवस्था ऋषियुग्म की प्रेरणा से ऐसे ही श्रेष्ठ भावों एवं सङ्कल्पों को पूर्णता तक पहुँचाने की दृष्टि से की गयी है। विश्वास है कि जो साधकगण इन सत्रों में निर्धारित अनुशासनों को निभायेंगे, तन्मयतापूर्वक निर्धारित साधना क्रम पूरा करेंगे, वे अनुदानों-अनुभूतियों के पात्र बनेंगे। यदि इसी आधार पर वे आगे का जीवन क्रम चलायेंगे- साधना पुरुषार्थ करते रहेंगे, तो आत्मकल्याण एवं लोकमंगल जैसे उभयपक्षीय लाभ सतत पाते रहेंगे। कोई भी साधक किसी विशिष्ट मनोकामना को लेकर इन सत्रों में भागीदारी न करे। बिना किसी कामना के मात्र आत्म परिष्कार-आत्ममन्थन ऊर्जा द्वारा जागरण ही एक मात्र लक्ष्य लेकर पूरी तन्मयता के साथ भागीदारी करें।

पाँच दिवसीय साधना सत्र का संक्षिप्त क्रम

सत्र की तिथि से एक दिन पूर्व दोपहर 1 बजे तक सत्र का पंजीयन कर आवास व्यवस्था हो जाती है। अपराह्न 3 बजे साधना प्रशिक्षण की प्रथम गोष्ठी होती है, जिसमें आसन, प्राणायाम , मुद्रा, बंध आदि क्रियाओं का अभ्यास होता है। सायं 7 बजे सत्र की दिनचर्या एवं अनुशासन बताकर साधना का संकल्प करा दिया जाता है। इसी के साथ मौन व्रत भी प्रारम्भ हो जाता है। पृष्ठ नं.- 3 पर दी गई दिनचर्या के अनुसार 4 दिन तक साधनाएँ चलती हैं। निष्कासन तप केवल प्रथम दिन सम्पन्न होता है।

पाँचवें दिन प्रातः 8 बजे तक की साधनाएँ सम्पन्न करके वंदनीया माताजी के कक्ष में मौन व्रत का समापन हो जाता है। तत्पश्चात् समापन गोष्ठी होती है, जिसमें युगधर्म के पालन हेतु लिये गये उत्तरदायित्व एवं सुनिश्चित साधना क्रम का संकल्प होता है। संकल्प गोष्ठी में एक फार्म भी दिया जाता है, जिसमें साधक अपनी अनुभूतियाँ व संकल्प लिखते हैं। गोष्ठी के पश्चात् भोजन प्रसाद ग्रहण कर 1 बजे तक स्थान खाली कर देना होता है। रुकना अनिवार्य ही हो तो स्वागत कक्ष से चर्चा करने पर अन्यत्र स्थान की व्यवस्था हो जाती है।